अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
मई २०१७
'कामना-विशेषांक'

विषय-सूची

(श्रीमाँ के वचन)

कामनाओं से भरा जीवन		४
कामना ही सहायक थी, कामना ही बाधक है		६
कामना क्या है		७
कामना का मूल		१०
तृप्ति द्वारा कामनाओं का उपचार		११
दमन द्वारा कामनाओं का उपचार		१२
कामनाओं को जीतने का सबसे प्रभावकारी उपाय		१३
किसी आवेग का प्रतिरोध कैसे किया जाये		१७
जब तुम किसी कामना को सहर्ष छोड़ देते हो		२१
"अभिरुचियाँ न रखने" का अर्थ		२७
कामना और आवश्यकता में भेद कैसे किया जाये		३१
अभीप्सा और कामना में भेद		३३
योग तथा वासना		३४
निष्काम कर्म		३६
निष्काम अभीप्सा		३८
विशुद्ध आनन्द को जानना		४०
अपने अन्दर की विजय का विश्व पर प्रभुत्व		४२
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		४५
धरती प्रकाश की ओर बढ़ रही है	श्री नलिनीकान्त गुप्त	४९
श्रीमाँ के साथ पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	५१
देखिये, यह रहस्य किसी के सामने खोलियेगा नहीं!	वन्दना	५४
झुंझुनू की सूचना		५८

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

सन्देश

... जीवन में, मनुष्य को कामनाओं के अस्तव्यस्त और निरर्थक जीवन और अभीप्सा के प्रकाश तथा आरोहण और अपनी निम्न प्रकृति पर विजय के बीच चुनाव करना पड़ता है।

—श्रीमाँ

कामनाओं से भरा जीवन

मधुर माँ, कुछ बच्चों की हमेशा माँगने की आदत क्यों होती है?

क्या माँगने की?

भौतिक चीज़ें, जैसे मिठाई या जो कुछ दिख जाये...

ओह, क्योंकि वे कामनाओं से भरे होते हैं। शायद वे कामनाओं के स्पन्दनों से निर्मित हुए थे, और चूँकि उनका अपने ऊपर कोई वश नहीं होता, इसलिए यह खुल कर प्रकट होती है। बड़ी आयु के लोग भी कामनाओं से भरे होते हैं, लेकिन सामान्यतः उनमें एक प्रकार का... कैसे कहा जाये?... वे अपनी कामनाओं को दिखाने में सकुचाते हैं, उन्हें ज़रा शरम-सी आती है, या फिर, उन्हें डर लगता है कि लोग उन पर हँसेंगे; इसलिए वे उन्हें प्रकट नहीं करते। लेकिन वे भी कामनाओं से भरे होते हैं। केवल बच्चे ज़्यादा सरल होते हैं। जब वे कोई चीज़ चाहते हैं तो कह देते हैं। वे अपने-आपसे यह नहीं कहते कि शायद इसे न दिखाने में ज़्यादा अकलमन्दी है, क्योंकि अभी तक उनके अन्दर इस प्रकार की बुद्धि नहीं आयी होती। लेकिन मेरा ख़्याल है कि, साधारणतः, कुछ अपवादों को छोड़ कर, लोग सतत कामनाओं में ही निवास करते हैं। वे उसे बस, प्रकट नहीं करते, और कभी-कभी तो वे उसे स्वयं अपने सामने भी स्वीकार करने से शरमाते हैं। लेकिन वह होती तो है, कुछ पाने की अपेक्षा होती है... व्यक्ति कोई सुन्दर चीज़ देखता है और वह तुरन्त प्राप्त करने की कामना में अनूदित हो जाती है; और यह बहुत-सी चीज़ों में एक है... यह बिलकुल बचकानी है। यह बिलकुल बचकानी और हास्यास्पद चीज़ है, क्योंकि सौ में से कम-से-कम नब्बे बार कामना करने वाले को जब वह चीज़ मिल जाती है, तो वह उसे देखता तक नहीं। यह बहुत ही कम होता है कि चीज़ भले कैसी भी क्यों न हो, पाने के बाद भी उसमें रस बना रहे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४६३-६४

मुझे एक व्यक्ति की याद है जो बहुत पहले यहाँ आया था। वह यहाँ से फ़्रेंच संसद के चुनाव के लिए खड़ा होना चाहता था। उसे मुझसे मिलाया गया क्योंकि लोग उसके बारे में मेरी राय जानना चाहते थे। उसने मुझसे आश्रम और यहाँ के जीवन के बारे में प्रश्न किये और यह पूछा कि मेरी दृष्टि में जीवन के लिए अनिवार्य अनुशासन क्या है। वह आदमी सारे दिन सिगरेट मुँह से लगाये रखता और ज़रूरत से ज़्यादा शराब पीता था। और स्वभावतः उसे यह शिकायत थी कि वह बहुत ज़्यादा थक जाता और कभी-कभी तो अपने-आप पर काबू भी न रख पाता था। मैंने उससे कहा : "देखो, सबसे पहले तुम्हें सिगरेट छोड़ देनी चाहिये और फिर शराब भी छोड़ देनी चाहिये।" उसे विश्वास ही नहीं हुआ, हक्का-बक्का होकर उसने मेरी ओर देखा और कहा : "लेकिन, अगर न तो सिगरेट पीनी है और न शराब ही, तो फिर जीने का अर्थ ही क्या है?" तब मैंने उससे कहा, "यदि तुम अभी उसी अवस्था में हो तो किसी और चीज़ के बारे में बातचीत करने का कोई फ़ायदा नहीं।"

यह बात हम जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक व्यापक है। यह हमें वाहियात लगती है, क्योंकि हमारे पास, निश्चय ही, सिगरेट फूँकने और शराब पीने से बढ़ कर मज़ेदार काम है, लेकिन साधारण मनुष्यों के लिए अपनी इच्छाओं की पूर्ति ही जीने का एकमात्र ध्येय है। उन्हें लगता है कि इस तरह वे अपनी स्वाधीनता और जीने के अभिप्राय को पुष्ट करते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ११०-११

भौतिक जगत् में, हमें जो स्थान पाना है उसके अनुसार हमारे जीवन और कार्य के लिए जो कुछ अनिवार्य हो वह हमें मिल जाता है।

हम अपनी आन्तरिक सत्ता के साथ जितने अधिक सचेतन रूप से सम्पर्क में हों, उतने ही अधिक यथार्थ साधन हमारे लिए जुटा दिये जाते हैं।

जब तुम्हारे अन्दर कोई कामना होती है तो तुम उस चीज़ के अधीन होते हो जिसकी कामना कर रहे हो, वह तुम्हारे मन और जीवन पर अधिकार कर लेती है और तुम दास बन जाते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २७६-७७

कामना ही सहायक थी, कामना ही बाधक है

"जब हम भोगों के परे चले जायेंगे तब हमें प्राप्त होगा 'आनन्द'। कामना ही सहायक थी, कामना ही बाधक है। (श्रीअरविन्द, 'विचार और झाँकियाँ')

यह स्पष्ट है कि मूल निश्चेतना की स्थिति से बाहर निकलने के लिए कामना अनिवार्य थी, क्योंकि कामना के बिना कर्मण्यता के प्रति कोई जाग्रति न होती। परन्तु जब एक बार व्यक्ति चैतन्य में **जन्म** ग्रहण कर लेता है, ठीक यही कामना, जिसने निश्चेतना से बाहर निकलने में सहायता की थी, जड़तत्त्व के बन्धनों से मुक्त होने तथा एक उच्चतर चेतना में ऊपर उठने से रोकती है।...

मधुर माँ, वह स्थिति किस प्रकार की होती है जिसमें मनुष्य सभी भोगों के परे चला जाता है?

हाँ तो, वह वास्तव में एक कामनारहित स्थिति होती है जिसमें मनुष्य—जैसा कि बाद में श्रीअरविन्द समझाते हैं—एक ऐसे आनन्द में निवास करता है जिसका कोई कारण नहीं होता, जो आन्तर या बाह्य परिस्थिति पर निर्भर नहीं करता, जो एक स्थायी, जीवन की परिस्थितियों से स्वतन्त्र, कारण-रहित अवस्था होती है। मनुष्य आनन्द में रहता है क्योंकि वह आनन्द में रहता है। और यथार्थ में ऐसा इसलिए होता है कि मनुष्य दिव्य सद्वस्तु के विषय में सचेतन हो गया है।

परन्तु मनुष्य जब तक कामनारहित नहीं हो जाता, वह आनन्द को नहीं अनुभव कर सकता। यदि किसी में कामनाएँ हैं तो वह जो कुछ अनुभव करता है वह मात्र इन्द्रिय-सुख और विषय-भोग होता है, पर वह आनन्द नहीं होता। आनन्द का एक नितान्त भिन्न स्वभाव है और वह सत्ता में केवल तभी अभिव्यक्त हो सकता है जब कामनाएँ निर्मूल हो जाती हैं। जब तक मनुष्य में कामनाएँ होती हैं, वह आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता; यदि उसमें आनन्द की कोई शक्ति उतर भी आये तो वह कामनाओं की उपस्थिति के कारण तुरत दूषित हो जायेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ४३९, ४४१-४२

कामना क्या है

... कामना निम्न प्रकृति की सबसे अधिक तमसाच्छन्न क्रिया है और यह मनुष्य को सबसे अधिक तमसाच्छन्न कर देती है। कामनाएँ दुर्बलता और अज्ञान की गतियाँ हैं और ये तुम्हें तुम्हारी दुर्बलता तथा अज्ञान से बाँधे रखती हैं। लोगों की धारणा है कि कामनाएँ उनके अपने अन्दर उत्पन्न होती हैं; वे महसूस करते हैं कि ये या तो उनके अपने-आप में से पैदा होती हैं या उनके अपने अन्दर उठती हैं, किन्तु यह एक भूल है। कामनाएँ अन्धकारग्रस्त निम्न प्रकृति के विशाल समुद्र की लहरें हैं और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में आती-जाती रहती हैं। मनुष्य कामना को अपने-आप में पैदा नहीं करते, बल्कि ये लहरें उन पर चढ़ आया करती हैं; जो कोई इनके लिए खुला हो या जिसने अपने बचाव का प्रबन्ध न किया हो, वह इनकी पकड़ में आ जाता है और इनके थपेड़ों को खाता हुआ इधर से उधर डोलता रहता है। कामना मनुष्य को अभिभूत करके, उस पर अधिकार जमा कर, उसे विवेक करने-लायक नहीं रहने देती और उसमें ऐसी धारणा पैदा कर देती है कि इसकी अभिव्यक्ति करना भी उसके अपने स्वभाव का एक अंग ही है। पर सच तो यह है कि मनुष्य के सच्चे स्वभाव के साथ इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। ईर्ष्या, डाह, घृणा और हिंसा आदि सभी निम्नतर आवेगों के सम्बन्ध में यही बात है। ये भी वे गतियाँ हैं जो तुम्हें पकड़ लेती हैं, वे लहरें हैं जो तुम पर चढ़ आती और तुम्हें पराजित करती हैं; इनका सच्चे चरित्र या सच्चे स्वभाव से कोई सम्बन्ध नहीं है, बल्कि ये तो उन्हें विरूप बना देती हैं। ये तुम्हारा वास्तविक या अविभाज्य अंग नहीं हैं, बल्कि ये इर्द-गिर्द के उन अन्धकारमय समुद्रों से आती हैं जिनमें निम्न प्रकृति की शक्तियाँ विचरण करती हैं। इन कामनाओं में, इन आवेशों में कोई व्यक्तित्व नहीं होता, इनमें तथा इनकी क्रियाओं में ऐसी कोई चीज़ नहीं होती जो तुम्हारे लिए विशेष हो, ये इसी रूप में सबके अन्दर प्रकट होती हैं। मन की अज्ञानमयी गतियाँ, व्यक्तित्व को ढक देने वाली तथा उसकी वृद्धि और सार्थकता को क्षीण करने वाली भ्रान्तियाँ, सन्देह और कठिनाइयाँ भी, इसी स्रोत से आती हैं। ये गुज़रती हुई लहरें हैं और जो कोई इनकी पकड़ में आने के लिए और अन्धे उपकरण की तरह

काम आने के लिए तैयार हो उसे पकड़ लेती हैं। फिर भी, प्रत्येक मनुष्य यह विश्वास लिये फिरता है कि ये गतियाँ उसका अपना अंग और उसके अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की बहुमूल्य उपज हैं। इतना ही नहीं, ऐसे लोग भी हैं जो इनसे और अपनी अक्षमताओं से चिपके रहते हैं...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १३२-३३

मधुर माँ, क्या कामना संक्रामक होती है?

हाँ वत्स, बहुत संक्रामक। यह बीमारी से भी अधिक संक्रामक होती है। अगर तुम्हारे पास के किसी व्यक्ति में कोई कामना है, तो वह तुरन्त तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर जाती है; और वस्तुतः, लोग इसी तरह ज़्यादा पकड़े जाते हैं। यह एक से दूसरे में जाती है...। भयंकर रूप से संक्रामक है, इतने सशक्त रूप से कि तुम देख भी नहीं पाते कि यह एक संक्रमण है। अचानक तुम्हें लगता है कि तुम्हारे अन्दर से कोई चीज़ उछल पड़ी है; किसी ने धीरे से उसे तुम्हारे अन्दर रख दिया है। निस्सन्देह, तुम कह सकते हो : "जिन लोगों में कामनाएँ हैं उन्हें अलग क्यों नहीं कर दिया जाता?" तब तो फिर हमें प्रत्येक को अलग करना होगा। *(माताजी हँसती हैं)*

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ४०

हमारी वे सारी कामनाएँ जो बिना विलीन हुए दबा दी गयी होती हैं, रात में जब इच्छा-शक्ति सुप्त अवस्था में होती है, अपनी तृप्ति का प्रयत्न करती हैं। और कामना निःशेष होती है बहुत ही प्रशस्त, सच्चाई से किये गये अनेक विश्लेषणों के बाद।

और चूँकि कामनाएँ रूप-सृष्टि की सक्रिय केन्द्र होती हैं, वे हमारे अन्दर और चारों ओर ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ जुटा देती हैं जो उनकी अपनी सन्तुष्टि के लिए अधिक-से-अधिक सहायक होती हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ३८

अगर, तुम जिस चीज़ को नहीं पा सकते उसके लिए तुम्हारे अन्दर प्रबल तृष्णा है तो तुम अपनी इच्छा को बाहर भेजते हो। वह तुमसे भिन्न एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व के रूप में संसार में घूमती है। वह एक छोटा-सा, कम या अधिक बड़ा चक्कर लगा कर तुम्हारे पास वापिस आ जाती है,

शायद तब तक तुम उसे भूल चुके होगे। जिन लोगों में एक तरह का आवेश होता है, जो कुछ चीज़ चाहते हैं—उनमें से वह एक छोटी-सी सत्ता के रूप में बाहर जाती है मानों परिवेश में एक छोटी-सी लौ हो। इस छोटी सत्ता की अपनी नियति होती है। वह संसार में घूमती-फिरती है, शायद दूसरी चीज़ें इसे इधर-से-उधर उछालती हैं। तुम उसे भूल चुके होते हो, लेकिन वह नहीं भूलेगी कि उसे अमुक परिणाम लाना है... कई-कई दिनों तक तुम अपने-आपसे कहते हो : "ओह! मैं उस स्थान तक, उदाहरण के लिए, जापान तक, जाने के लिए कितना इच्छुक हूँ। मैं इतनी सारी चीज़ें देखना चाहूँगा।" और तुम्हारी इच्छा तुम्हारे अन्दर से बाहर निकल पड़ती है। लेकिन इच्छाएँ भगोड़ी होती हैं, तुम उसे पूरी तरह भूल गये हो जिसे तुमने इतनी शक्ति के साथ बाहर फेंका था। किसी और चीज़ के बारे में सोचने के लिए तुम्हारे पास बहुत-से कारण हैं। दस वर्ष या उससे भी अधिक के बाद, कम भी सम्भव हैं, वह तुम्हारे पास तुरत परोसी हुई गरम थाली की तरह वापिस आती है। हाँ, भली-भाँति सजे हुए गरम भोजन की तरह। तुम कहते हो : "मुझे अब इसमें रस नहीं है।" दस-बीस वर्ष **बाद** तुम्हें उसमें रुचि नहीं रहती। यह एक छोटी-सी रचना थी जो बाहर गयी और उसने भरसक अपना काम किया...।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २०

... वस्तुएँ छिपी हुई इच्छाओं से भी आ सकती हैं। इच्छाएँ अवचेतना में कार्य करती हैं और तुम्हारे पास ऐसी वस्तुएँ ले आती हैं जिन्हें तुम चाहे न भी पहचान सको पर ये भगवान् के यहाँ से नहीं, बल्कि छद्मवेशी इच्छाओं से आती हैं।

जब कोई चीज़ भगवान् के यहाँ से आती है तो तुम आसानी से जान सकते हो। तुम अपने को स्वतन्त्र अनुभव करते हो, अनुद्विग्न और स्वस्थ पाते हो और शान्त रहते हो। परन्तु किसी चीज़ के मिलने पर यदि तुम उस पर टूट पड़ते हो और मारे खुशी के चिल्ला उठते हो : "आख़िरकार यह मुझे मिल ही गयी" तो तुम्हें निश्चयपूर्वक यह समझ लेना चाहिये कि वह चीज़ भगवान् के यहाँ से नहीं आयी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १३

कामना का मूल

मेरा ख़्याल है कि अपने मूल में यह विकास की अन्धकारमयी आवश्यकता है। जैसा कि जीवन के निम्नतम रूपों में होता है, प्रेम अपने-आपको निगलने, आत्मसात् करने, किसी और चीज़ के साथ अपने-आपको जोड़ने की आवश्यकता में बदल लेता है; यह जीवन के निम्नतम रूपों में प्रेम का सबसे आदिम रूप है, यह ग्रहण करना और आत्मसात् करना है। हाँ, तो यह ग्रहण करने की आवश्यकता ही कामना है। शायद अगर हम निश्चेतना की अन्तिम गहराइयों में काफ़ी दूर तक जायें, तो हम कह सकेंगे कि प्रेम ही कामना का उत्स है। यह अपने अधिक-से-अधिक अन्धकारमय और अधिक-से-अधिक निश्चेतन रूप में प्रेम ही है। यह किसी चीज़ के साथ जुड़ने की आवश्यकता, एक आकर्षण, ग्रहण करने की एक आवश्यकता है।

उदाहरण के लिए... तुम एक चीज़ देखते हो जो तुम्हें बहुत सुन्दर, बहुत सामञ्जस्यपूर्ण, बहुत मोहक लगती है या वास्तव में ऐसी है; अगर तुम्हारे अन्दर सच्ची चेतना है, तो तुम किसी बहुत सुन्दर, बहुत सामञ्जस्यपूर्ण चीज़ के साथ सचेतन सम्पर्क में आने का, उसे देखने का आनन्द प्राप्त करते हो, और बस। चीज़ वहीं समाप्त। तुम्हें इसका आनन्द मिल गया—कि एक ऐसी चीज़ मौजूद है और बस। और यह चीज़ कलाकारों में प्रायः पायी जाती है जिनमें सौन्दर्य की भावना होती है। उदाहरण के लिए, एक कलाकार किसी सुन्दर जीव को देख कर उसकी सुन्दरता, उसकी गतिविधि के सामञ्जस्य, उसके लालित्य आदि को देखने का आनन्द लेता है, और बस, इतना ही। चीज़ वहीं पर रुक जाती है। वह पूरी तरह प्रसन्न, पूरी तरह सन्तुष्ट होता है, क्योंकि उसने कोई सुन्दर चीज़ देख ली। एक सामान्य चेतना, बिलकुल ही सामान्य चेतना, सभी सामान्य चेतनाओं की तरह मन्द चेतना—जैसे ही वह किसी सुन्दर चीज़ को देखती है, चाहे वह चीज़ हो या व्यक्ति, तो झट उछल पड़ती है और कहती है: "यह मुझे चाहिये।" यह शोचनीय है, है न? और इस सौदे में उसे सुन्दरता का आनन्द भी नहीं मिल पाता, क्योंकि वह कामना से परेशान होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ४१

तृप्ति द्वारा कामनाओं का उपचार

"अपने ही विचारों से चिपटा हुआ मन"![1] ..."अपनी ही कामनाओं को पसन्द करता हुआ प्राण"! और तब मन प्राण का साथी बन जाता है और कामनाओं को बनाये रखने के लिए प्रशंसनीय तर्क, व्याख्या और औचित्य प्रतिपादित करता है।... मैंने लोगों को यह कहते हुए सुना है कि कामनाओं की पूर्ति ही उनसे पिण्ड छुड़ाने का सबसे अच्छा तरीका है। वे इसे एक सिद्धान्त बना लेते हैं। तुम अपनी कामनाओं को तुष्ट करते चलो और तब, स्वभावतः, दूसरी आ जाती हैं—हाँ तो, कामनाएँ एक-दूसरी का स्थान बड़ी आसानी से लेती रहती हैं, और तुम कामनाओं की तुष्टि में लग जाते हो और यह सोचते हो कि तुम उनसे पिण्ड छुड़ा रहे हो। इसमें तुम्हें कम-से-कम सौ जीवन तो लग ही जायेंगे!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. १८०

कामनाओं के आगे झुकना उनसे पिण्ड छुड़ाने का तरीका नहीं है। कामनाओं का कहीं अन्त नहीं है। प्रत्येक सन्तुष्ट कामना के स्थान पर एक और आ जाती है और वे अधिकाधिक शोर मचाती जाती हैं।

इस निम्नतर चेतना में से बाहर निकल कर तथा उच्चतर चेतना में उठ कर, कामनाओं पर विजय पाकर ही तुम उनसे पिण्ड छुड़ा सकते हो।

मनुष्य होने के लिए अनुशासन अनिवार्य है। अनुशासन के बिना तुम केवल पशु होते हो। तुम मनुष्य बनना तभी शुरू करते हो जब तुम उच्चतर और सत्यतर जीवन के लिए अभीप्सा करते हो और रूपान्तर के अनुशासन को स्वीकार करते हो। और इसके लिए तुम्हें अपनी निम्न प्रकृति और उसकी कामनाओं पर प्रभुत्व पाने से आरम्भ करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २८०, ५०

१. श्रीअरविन्द ने कहा कि रूपान्तर के मार्ग में "तीन मौलिक बाधाएँ" आ सकती हैं, उनमें से एक है "अहंकार—अपने ही विचारों से चिपटा हुआ मन, सच्चे समर्पण की जगह अपनी ही कामनाओं को पसन्द करता हुआ प्राण, अपनी ही आदतों से बँधा हुआ भौतिक शरीर।"

दमन द्वारा कामनाओं का उपचार

कामना का सम्बन्ध प्राणिक क्षेत्र से होता है पर इस कामना के मर्मस्थल में सर्वदा ही एक विचार विद्यमान रहता है, और जब कामना अपने अन्दर मानसिक रचना की इस शक्ति को तथा प्राणगत उपलब्धि की शक्ति को धारण करती है तो वह भी अधिक सक्रिय और सशक्त बन जाती है। प्राण सत्ता की क्रियाशीलता का, सक्रिय ऊर्जा का, केन्द्र है और ये दोनों मिल कर बहुत शक्तिशाली चीज़ उत्पन्न करते हैं जिसमें अपने-आपको चरितार्थ करने की यथेष्ट प्रवृत्ति होती है—इसके अलावा, विश्व के अन्दर की प्रत्येक वस्तु अभिव्यक्त होना चाहती है, और जो चीज़ें अभिव्यक्त होने से रोक दी जाती हैं वे, बस उसी तथ्य के कारण, अपनी शक्ति और क्षमता खो बैठती हैं। जो पद्धतियाँ आत्म-संयम प्राप्त करना चाहती हैं उनमें से अधिकांश ने दमन का, क्रियाओं के निग्रह का प्रयोग किया है और उनकी धारणा यह रही है कि यदि कोई पर्याप्त लम्बे समय तक इस निग्रह को जारी रखे तो वह अवाञ्छित तत्त्वों को मार डालने में सफल हो जाता है। यह बात बिलकुल सही होती यदि यह केवल भौतिक जगत् का प्रश्न होता, पर भौतिक जगत् के पीछे अवचेतन जगत् है और अवचेतन जगत् के पीछे अपार 'निश्चेतन' जगत् फैला हुआ है। और लोग यह नहीं जानते कि यदि वे अपने अन्दर स्वयं कामना को ही, रचना के बीज को ही नष्ट नहीं कर देते तो यह रचना, जिसे तुम व्यक्त होने से रोक रहे हो, मानों अवचेतना के अन्दर दबा दी जाती है—नीचे खदेड़ दी जाती है और एकदम अवचेतना के तल में दबी पड़ी रहती है—और, यदि तुम अवचेतना में जाओ और उसे खोजो तो देखोगे कि वह वहाँ अपना कार्य करने के लिए प्रतीक्षा कर रही है। यही कारण है कि इतने सारे लोगों को वर्षों पर वर्ष संयम कर चुकने के बाद सहसा कोई अवाञ्छित क्रिया, वह जितने ही अधिक दिनों तक दमित थी उतनी ही अधिक शक्ति के साथ नीचे से ऊपर उमड़ कर उन्हें आश्चर्य में डाल देती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ६९

मानव प्रेम अस्थायी है। केवल भागवत प्रेम कभी धोखा नहीं देता। —श्रीमाँ

कामनाओं को जीतने का सबसे प्रभावकारी उपाय

साधारणतः, समस्त शिक्षण, समस्त संस्कृति, इन्द्रियों और सत्ता का समस्त परिमार्जन सहज वृत्तियों, कामनाओं, आवेगों की शुद्धि के सबसे अच्छे उपायों में से एक है। इन चीज़ों को अलग कर देने से ही उनका इलाज नहीं हो जाता; उनके इलाज का सबसे अच्छा उपाय है उन्हें प्रशिक्षित करना और बौद्धिक बनाना, सुरुचिपूर्ण और शुद्ध बनाना। सामञ्जस्य और बोध की यथार्थता को एक हद तक प्राप्त करना, प्रगति और वृद्धि के लिए यथासम्भव अधिक-से-अधिक विकास का अवसर देना—यह सत्ता के संस्कार, सत्ता के शिक्षण का एक भाग है। यह उन लोगों की तरह है जो अपनी बुद्धि को प्रशिक्षित करते हैं, जो सीखते हैं, पढ़ते हैं, सोचते हैं, तुलना करते हैं, अध्ययन करते हैं। ये ऐसे लोग हैं जिनके मन विस्तृत होते हैं, ये उन लोगों की अपेक्षा, जिन्हें मानसिक शिक्षा नहीं मिली, बहुत ज़्यादा विशाल और सहानुभूतिपूर्ण होते हैं, मानसिक शिक्षा-विहीन लोगों में कुछ ओछे विचार होते हैं जो कभी-कभी उनकी चेतना में परस्पर विरोधी होते हैं, फिर भी, पूरी तरह उन पर शासन करते हैं क्योंकि उनकी कुल पूँजी यही है और वे सोचते हैं कि ये अनोखे विचार हैं जिन्हें उनके जीवन का पथ-प्रदर्शन करना चाहिये; ये लोग बिलकुल संकीर्ण और सीमित होते हैं जब कि जो पढ़े-लिखे और प्रशिक्षित होते हैं—उनके मन का विस्तार होता है और वे देख सकते हैं, विचारों की तुलना कर सकते हैं, और देख सकते हैं कि संसार में सभी सम्भव विचार हैं और एक सीमित संख्या के विचारों के साथ जकड़े रहना और उन्हें ही सत्य की अनन्य अभिव्यक्ति मानना ओछापन और बेतुकापन है।

चेतना को उच्चतर विकास हेतु तैयार करने के लिए शिक्षा निश्चय ही सबसे अच्छे साधनों में से एक है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ६३-६४

मधुर माँ, कामनाओं और आसक्तियों को जीतने का सबसे अधिक प्रभावशाली तरीका क्या है? उन्हें एक ही प्रहार में काट देना, भले उससे आदमी टूट ही क्यों न जाये, या उन्हें एक-एक करके सावधानी

से और निश्चित रूप से दूर करना?

ये दोनों ही उपाय समान रूप से प्रभावहीन हैं। इनका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि तुम अपने-आपको छलते और धोखा देते हो कि तुमने अपनी कामनाओं को जीत लिया है, जब कि सचमुच अच्छी-से-अच्छी स्थिति में भी तुम उन्हें नीचे दबा कर उन पर बैठे रहते हो—वे अवचेतना में तब तक दबी रहती हैं जब तक वहाँ पर उनका विस्फोट न हो जाये और वे सारी सत्ता में उथल-पुथल न मचा दें।

तुम्हें **अन्दर से** अपनी निम्न प्रकृति का स्वामी बनना चाहिये—अपनी चेतना को दृढ़ता के साथ ऐसे क्षेत्र में स्थापित करके जहाँ वह समस्त कामना और आसक्तियों से मुक्त हो, क्योंकि वहाँ वह दिव्य ज्योति और शक्ति के प्रभाव तले होती है। यह एक लम्बा और कठोर परिश्रम है जिसे अचूक निष्कपटता और अथक अध्यवसाय के साथ हाथ में लेना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ३४१-४२

बुद्ध ने समझदारी के साथ ही यह कहा था कि जब तक तुम्हारे अन्दर कामना का एक भी स्पन्दन है, यह स्पन्दन सारे जगत् में फैल जायेगा और जो उसे ग्रहण करने के लिए तैयार हैं वे सब उसे ग्रहण कर लेंगे। उसी तरह तुम्हारे अन्दर यदि कामना के स्पन्दन के लिए ज़रा-सी भी ग्रहणशीलता है तो तुम कामना के उन सभी स्पन्दनों की ओर खुले रहोगे जो संसार में निरन्तर चक्कर लगाते रहते हैं। और यही कारण है कि उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला : इस भ्रम से बाहर निकल जाओ, पूर्णतः अलग हो जाओ और तुम मुक्त हो जाओगे। मैं इसे अपेक्षाकृत बहुत स्वार्थपूर्ण समझती हूँ, पर आख़िरकार, यही एकमात्र पथ था जिसे उन्होंने जाना था। एक दूसरा भी है : भागवत 'शक्ति' के साथ इतनी अच्छी तरह एकात्म हो जाना ताकि संसार में चक्कर लगाने वाले सभी स्पन्दनों पर निरन्तर और सचेतन रूप से क्रिया करने की योग्यता प्राप्त हो जाये। वैसी स्थिति में अवाञ्छित स्पन्दनों का तुम्हारे ऊपर अब कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि तुम्हारा प्रभाव उन पर पड़ता है, अर्थात् कोई अवाञ्छित स्पन्दन ऐसा नहीं होता जो तुम्हारे देखे बिना तुम्हारे अन्दर घुस जाये और वहाँ अपना कार्य करे, बल्कि, इसके

विपरीत, तुम उसे देखते हो और तुरत उसके आते ही उसे रूपान्तरित करने के लिए उस पर कार्य करते हो और वह रूपान्तरित होकर अपना हितकारी कार्य करने तथा दूसरों को उसी रूपान्तर के लिए तैयार करने के लिए जगत् में वापस लौट जाता है। बस, श्रीअरविन्द ठीक यही चीज़ करने का प्रस्ताव रख रहे हैं और, अधिक स्पष्ट रूप में, यही करने के लिए हमसे कह रहे हैं, वे यही चाहते हैं कि हम इसे करें :

(संसार से) दूर भागने के बदले हम अपने अन्दर उस 'शक्ति' को ले आयें जो विजय प्राप्त कर सके।

ध्यान रखो कि चीज़ें इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि यदि महत्त्वाकांक्षा का एक अत्यन्त नन्हा-सा कण भी बना रहा और हमने इस 'शक्ति' को अपनी व्यक्तिगत सन्तुष्टि के लिए चाहा तो इसे हम कभी प्राप्त नहीं कर सकते, वह 'शक्ति' कभी नहीं आयेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४५७-५८

क्या संरक्षक आवरण[१] भी कामना की लहरों तथा दूसरों से आने वाले आवेगों आदि को अनुभव कर सकता है?

क्या तुम्हारा मतलब यह है कि संरक्षक आवरण, जिसकी चर्चा मैंने भौतिक दृष्टिकोण से की थी, नैतिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी उपयोगी हो सकता है या नहीं? यह वही आवरण नहीं है, यह दूसरा क्षेत्र है। मनुष्य का यह सूक्ष्म-भौतिक आवरण एकदम अक्षत हो सकता है और सभी बीमारियों और दुर्घटनाओं से उसे बचाने के लिए अद्‌भुत ढंग से कार्य कर सकता है, और फिर भी उसके साथ-ही-साथ, वह मनुष्य कामनाओं से भरपूर हो सकता है, कारण, कामनाएँ दूसरे क्षेत्र की चीज़ें हैं। कामना कोई भौतिक चीज़ नहीं है, कामना एक प्राणिक वस्तु है, और यह आवरण प्राण की अपेक्षा अधिक स्थूल है : यह प्राण को प्राणिक जगत् के सम्पर्क में आने तथा वहाँ से उसके समस्त आवेगों को ग्रहण करने से नहीं रोक सकता।

१. सत्ता के चारों ओर एक आवरण होता है जो शरीर की रक्षा करता है। यह सूक्ष्म आवरण विभिन्न शिक्षा-पद्धतियों में विभिन्न नामों से जाना जाता है। उदाहरण के लिए, वायवीय शरीर, स्नायविक आवरण इत्यादि। —श्रीमाँ

स्वभावतः ही, जिस व्यक्ति ने आत्म-विजय पा ली है, जिसने अपने चैत्य पुरुष को पा लिया है, जो निरन्तर इस चैत्य पुरुष की चेतना में निवास करता है, जिसने अन्तरस्थ दिव्य 'उपस्थिति' के साथ एक प्रकार का पूर्ण सम्बन्ध अथवा कम-से-कम एक प्रकार का सतत सम्बन्ध स्थापित कर लिया है वह ज्ञान, ज्योति, सौन्दर्य, पवित्रता के एक वातावरण से आवृत होता है जो कामनाओं से बचाने वाला सबसे श्रेष्ठ संरक्षण है, परन्तु फिर भी यह सम्भव है कि यदि मनुष्य सर्वदा सावधान न रहे तो कामना अन्दर प्रवेश कर सकती है, क्योंकि हम कहते हैं कि वह बाहर से आती है। हो सकता है कि मनुष्य ने अपने अन्दर किसी कामना को जीत लिया हो, पर फिर भी वह एक छूत की बीमारी की तरह बाहर से आ सकती है; परन्तु ज्योति, ज्ञान और पवित्रता के इस आवरण के होने पर कामना अपनी शक्ति खो बैठती है और वह एक अन्ध और तात्कालिक प्रत्युत्तर जगाने वाली क्रिया के रूप में नहीं आती, उस समय मनुष्य यह देखता है कि क्या घटित हो रहा है, उस शक्ति के बारे में सचेतन हो जाता है जो घुसना चाहती है, और वह चुपचाप—जब वह इच्छित नहीं होती—एक आन्तरिक क्रिया कर सकता और अन्दर आने वाली कामना का बहिष्कार कर सकता है। बस, यही एकमात्र सच्चा संरक्षण है : एक जाग्रत् चेतना, शुद्ध और सतर्क, अर्थात्, जो सोती नहीं, चीज़ों के बारे में सचेतन हुए बिना उन्हें अन्दर आने नहीं देती। सबसे बुरी बात यह है कि लोग बिलकुल अचेतन होते हैं और संक्रामक चीज़ के अन्दर प्रवेश करने के बाद ही उसे वे देखते हैं, और प्रतिक्रिया करने में थोड़ी देर हो जाती है—ऐसा करना असम्भव नहीं है, परन्तु है कुछ अधिक कठिन—जब मनुष्य उसे आते हुए देखे, यदि चारों ओर के वातावरण में वह एक प्रकार के छोटे-से काले धब्बे का आकार लेती हुई आती है, तो जैसे वह किसी अप्रिय वस्तु को दूर हटा देता है वैसे ही उसे निकाल बाहर कर सकता है। परन्तु भौतिक स्तर के संरक्षक आवरण का इस अवस्था में कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३८६-८८

अधिक ऐकान्तिक रूप से 'भागवत प्रेम' का सहारा लो। जब मनुष्य 'भागवत प्रेम' पाये तो किसी भी मानव प्रेम का क्या मूल्य हो सकता है? —श्रीमाँ

किसी आवेग का प्रतिरोध कैसे किया जाये

प्राण स्वभाव से ही अमर है। लेकिन वह सुव्यवस्थित नहीं है और अपनी सामान्य अवस्था में बहुत अधिक उत्तेजित, विरोधी आवेशों और आवेगों से भरा रहता है। अतः इस सबके द्वारा वह अपने-आपको नष्ट कर लेता है। लेकिन तत्त्व जीते रहते हैं। कामना, आवेग बहुत ज़्यादा सजीव वस्तुएँ हैं और कामना बहुत ज़्यादा लम्बे समय तक उस व्यक्ति से स्वतन्त्र होकर भी जी सकती है जो... उनके वश में होता है, मुझे कहना चाहिये, जो कामना और आवेग को पैदा नहीं करता, क्योंकि ये ऐसी चीज़ें हैं जिनके व्यक्ति वश में होता है, जो बाहर से उस तूफ़ान की तरह घुस आती हैं जो तुम्हें पकड़ लेता और उड़ा ले जाता है, जब तक कि तुम अपने-आपको इस तरह बिलकुल शान्त, बिलकुल स्थिर, बिलकुल अचञ्चल न रख सको, मानों तुम अपनी सत्ता में किसी अचञ्चल और ठोस वस्तु से चिपके हुए हो। जब तूफ़ान आना शुरू करे तो उसे ऊपर से चले जाने दो—वह आता है, लेकिन तुम हिलो भी मत, अपने-आपको हिलने-डुलने या काँपने मत दो, एकदम स्थिर बने रहो, यह जानते हुए कि ये गुज़रते हुए तूफ़ान हैं। और जब तूफ़ान आकर चला जाये तब तुम गहरी साँस ले सकते हो और अपना सामान्य सन्तुलन वापिस ला सकते हो। इसमें कम-से-कम हानि हुई है। इस प्रकार के मामलों में, साधारणतः, अन्त में चीज़ें अच्छा रूप ही लेती हैं।

लेकिन जो कॉर्क के उस टुकड़े की तरह हैं जो पानी पर इधर-उधर दौड़ते फिरते हैं, जो अपना सन्तुलन फिर से पा लेने में और अपना निरीक्षण करने में सफल नहीं होते, उन्हें कुछ भी हो सकता है। वे अचानक भँवर में खिंच सकते हैं और चट निगल लिये जाते हैं। और कुछ भी नहीं बचता।...

मन में उन्हें रोकने के लिए काफ़ी बल कभी नहीं होता! क्योंकि मन एक ऐसा यन्त्र है जो सब तरह की चीज़ों को सब ओर से देखने के लिए बनाया गया है। तब तुम ऐसे प्रबल संकल्प की आशा कैसे कर सकते हो भला जो आवेग का प्रतिरोध कर सके, जब कि मन पहले इस ओर से देखता है और फिर उस ओर से? और फिर कहता है: "आख़िर, बात ऐसी है, और ऐसी क्यों न हो?" तो फिर तुम्हारा संकल्प कहाँ है?...

जैसा कि मैंने यहाँ कहा है,[१] वह हमेशा हर चीज को समझाने के लिए, हर चीज़ को न्यायसंगत ठहराने के लिए रास्ता निकाल लेता है और हर चीज़ के लिए प्रशंसनीय कारण बतलाता है।

केवल चैत्य पुरुष में ही हस्तक्षेप करने की शक्ति है। अगर तुम्हारे मन का चैत्य के साथ सम्पर्क है, अगर वह चैत्य के प्रभाव को ग्रहण करता है तो वह प्रतिरोध संगठित करने के लिए काफ़ी बलवान् होता है। वह जानता है कि सच्ची चीज क्या है और मिथ्या क्या है; और यह जानते हुए कि सत्य क्या है, यदि उसमें सद्भावना हो तो वह प्रतिरोध संगठित करेगा और युद्ध करके विजय लाभ करेगा। लेकिन शर्त यही है : वह चैत्य पुरुष के सम्पर्क में हो।

क्योंकि सबसे अधिक सुन्दर नियमों में भी, यदि तुम मानसिक रूप से बहुत-सी चीज़ें जानते हो और तुम्हारे पास सराहनीय सिद्धान्त हैं उनमें भी इतना बल नहीं होता कि आवेग का प्रतिरोध कर सकने के लिए सक्षम संकल्प पैदा कर सकें। एक बार जब तुम पूर्णतः कटिबद्ध हो, तुमने निश्चय कर लिया है कि चीज़ इस तरह होगी—उदाहरण के लिए, तुम अमुक चीज़ नहीं करोगे : यह तय हो गया कि तुम नहीं करोगे—तब फिर यह कैसे होता है कि अचानक (तुम्हें पता नहीं होता कि कैसे या क्यों या क्या हुआ), तुमने कुछ भी निश्चय नहीं किया! और तब तुरन्त ऐसा करने के लिए बड़ा अच्छा कारण अपने अन्दर पा लेते हो...। और बहानों के बीच, इस प्रकार का बहाना हमेशा बनाया जाता है : "हाँ, अगर मैं इस बार यह कर लूँ तो कम-से-कम मुझे यह विश्वास हो जायेगा कि यह बहुत बुरा है और इसके बाद मैं ऐसा कभी न करूँगा। यह आख़िरी बार होगा।" यह सबसे सुन्दर बहाना है जो तुम अपने-आपको हमेशा देते हो : "बस, यह आख़िरी बार कर रहा हूँ। इस बार यह पूरी तरह समझ लेने के लिए कर रहा हूँ

१. "इस भौतिक मन की निम्न प्राणिक चेतना और उसकी गतियों के साथ एक प्रकार की मैत्री होती है। जब निम्न प्राण किन्हीं कामनाओं और आवेगों को प्रकट करता है तो अधिकतर भौतिक मन उसकी सहायता के लिए आ जाता है, उन्हें सत्य का आभास देने वाली व्याख्याओं, तर्कों और बहानों के द्वारा न्यायसंगत ठहराता है और उनका समर्थन करता है।"

'प्रश्न और उत्तर १९२९-१९३१' (२६ मई १९२९)

कि यह बुरा है और इसे नहीं करना चाहिये और मैं इसे आगे कभी न करूँगा। बस, यह आख़िरी बार है।" हर बार ही आख़िरी बार होता है! और फिर, तुम फिर से शुरू कर देते हो।

हाँ, कुछ ऐसे लोग हैं जिनके विचार कुछ कम स्पष्ट होते हैं, जो अपने-आपसे कहते हैं : "आख़िर, मैं यह क्यों नहीं करना चाहता? ये नियम हैं, ये ऐसे सिद्धान्त हैं जो सत्य नहीं भी हो सकते। अगर मेरे अन्दर यह आवेग है तो कौन-सी चीज़ है जो मुझसे कहती है कि यह आवेग किसी नियम से ज़्यादा अच्छा नहीं है?..." यह उनके लिए आख़िरी बार नहीं होता। वे इसे बिलकुल स्वाभाविक रूप में स्वीकार करते हैं।

इन दो छोरों के बीच सब प्रकार की सम्भावनाएँ हैं। लेकिन उनमें सबसे ख़तरनाक है यह कहना : "अच्छा, मैं इसे और एक बार कर रहा हूँ, इससे यह चीज़ मेरे अन्दर से धुल जायेगी। इसके बाद मैं इसे फिर कभी न करूँगा।" और यह शुद्धि कभी काफ़ी नहीं होती!

यह काम होता तभी है जब तुम यह निश्चय कर लो : "अच्छा, इस बार, मैं कोशिश करूँगा कि मैं इसे नहीं करूँ। मैं इसे नहीं करूँगा। मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूँगा और इसे नहीं करूँगा।" अगर तुम्हें ज़रा-सी भी सफलता मिले तो यह बहुत है। कोई बड़ी सफलता नहीं, बस ज़रा-सी सफलता, बहुत आंशिक सफलता : तुम जो करने के लिए आते हो वह कर नहीं पाते; पर यह उत्कण्ठा, यह इच्छा, यह आवेग अब भी हैं। ये तुम्हारे अन्दर चक्कर खाने लगते हैं, लेकिन बाहर तुम प्रतिरोध करते हो : "मैं ऐसा नहीं करूँगा, मैं नहीं हिलूँगा; भले मुझे हाथ-पाँव क्यों न बाँध लेने पड़ें, मैं यह बिलकुल न करूँगा।" यह आंशिक सफलता है—लेकिन यह एक बड़ी विजय है, क्योंकि इसके कारण अगली बार तुम इससे कुछ ज़्यादा कर पाओगे। अर्थात्, अपने उग्र आवेगों को अपने अन्दर बन्द रखने की जगह, तुम उन्हें ज़रा शान्त करना शुरू कर सकते हो; और पहले तुम उन्हें कठिनाई के साथ, धीरे-धीरे शान्त कर सकोगे। वे बहुत समय तक रहेंगे, वे वापिस आ जायेंगे, वे तुम्हें कष्ट देंगे, तंग करेंगे, तुम्हारे अन्दर घृणा पैदा करेंगे। यह सब होगा, लेकिन यदि तुम अच्छी तरह प्रतिरोध करो और कहो : "नहीं, मैं यह सब नहीं करूँगा; चाहे जो भी मूल्य चुकाना पड़े, मैं कुछ न करूँगा। मैं चट्टान की तरह रहूँगा," तब थोड़ा-थोड़ा करके,

थोड़ा-थोड़ा करके वे चीज़ें कम होने लगेंगी, कम होने लगेंगी। तब दूसरा मनोभाव सीखने का समय आयेगा : "अब मैं चाहता हूँ कि मेरी चेतना इन चीज़ों से ऊपर रहे। अब भी बहुत-से युद्ध होंगे, लेकिन अगर मेरी चेतना इन सबसे ऊपर रहे तो आहिस्ता-आहिस्ता ऐसा समय आयेगा जब यह चीज़ फिर से वापिस न आयेगी।" और फिर, एक समय आता है जब तुम अनुभव करते हो कि तुम बिलकुल मुक्त हो गये हो; तुम उसे देखते तक नहीं, और तब मामला ख़तम। इसमें बहुत समय लग सकता है, यह स्थिति जल्दी भी आ सकती है : यह चरित्र-बल और अभीप्सा की सच्चाई पर निर्भर करता है। लेकिन जिन लोगों में थोड़ी-सी भी सच्चाई है, वे भी यदि अपने-आपको इस पद्धति के अधीन कर सकें तो सफल होते हैं। इसमें समय लगता है। वे पहली चीज़ में सफल हो जाते हैं, यानी, इसे व्यक्त न करने में। धरती पर सभी शक्तियाँ अपने-आपको प्रकट करने की ओर प्रवृत्त होती हैं। ये शक्तियाँ अपने-आपको व्यक्त करने के उद्देश्य से आती हैं और अगर तुम बीच में एक बाधा खड़ी कर दो और उन्हें प्रकट करने से इन्कार कर दो तो वे कुछ समय तक बाधा के विरुद्ध टक्करें लेने की कोशिश कर सकती हैं, पर अन्त में वे स्वयं थक जायेंगी और अभिव्यक्त हुए बिना ही लौट जायेंगी और तुम्हें चैन में छोड़ जायेंगी।

अतः तुम्हें यह कभी न कहना चाहिये : "पहले मैं अपने विचार की शुद्धि करूँगा, अपने शरीर की शुद्धि करूँगा, अपने प्राण की शुद्धि करूँगा, और बाद में अपने कर्मों की शुद्धि करूँगा।" यह सामान्य क्रम है, पर यह कभी सफल नहीं होता। प्रभावशाली क्रम है, बाहर से शुरू करना : "सबसे पहली चीज़ है कि मैं यह न करूँगा और बाद में मैं इसकी इच्छा न करूँगा, और उसके बाद मैं अपने दरवाज़े सभी आवेगों के लिए बिलकुल बन्द कर दूँगा : मेरे लिए उनका अस्तित्व ही नहीं है, अब मैं उनसे बाहर निकल आया हूँ।" यह वास्तविक क्रम है, प्रभावशाली क्रम है। पहले, क्रिया मत करो। तब तुम्हारी इच्छा नहीं रह जायेगी। उसके बाद चीज़ तुम्हारी चेतना से बिलकुल निकल जायेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २३२-३६

जब तुम किसी कामना को सहर्ष छोड़ देते हो

बुद्ध ने कहा है कि कामना को सन्तुष्ट करने की अपेक्षा उस पर विजय पाने में कहीं अधिक आनन्द है। यह एक ऐसा अनुभव है जिसे सभी पा सकते हैं, और जो सचमुच बहुत मज़ेदार है, बहुत ही मज़ेदार।

पैरिस की बात है, किसी को *मासने* के गीति-नाट्य के प्रथम प्रदर्शन के लिए निमन्त्रित किया गया था (प्रथम प्रदर्शन का मतलब है, नाटक का पहला दिन)। मेरा ख़्याल है... मुझे अब ठीक याद नहीं वह किसका था। विषय सुन्दर था, नाटक सुन्दर था, और संगीत अरुचिकर नहीं था; यह उसका पहला प्रदर्शन था, यह व्यक्ति ललित-कलाओं के मन्त्री के विशेष कक्ष में निमन्त्रित था। सभी सरकारी नाट्यशालाओं में पहले दिन मन्त्री के लिए विशेष स्थान रहता है। उसने देखा कि ललित-कलाओं का मन्त्री एक भला आदमी था, देहाती बूढ़ा भला आदमी जो पैरिस में बहुत कम रहा था, वह अपने मन्त्री-पद पर नया ही था और नयी चीज़ें देखने में बच्चों का-सा आनन्द ले रहा था। लेकिन वह एक सुसंस्कृत व्यक्ति था, और चूँकि उसने एक महिला को निमन्त्रण दिया था, इसलिए उसने महिला को सामने बिठाया और अपने-आप पीछे बैठा। लेकिन वह था बहुत दुःखी, क्योंकि वह सब कुछ न देख पा रहा था। वह इस तरह झुका हुआ था और ज़्यादा दिखाये बिना कुछ देखने की कोशिश कर रहा था। जो महिला उसके सामने बैठी थी उसने यह देखा। उसे भी बहुत रस आ रहा था, बहुत सुन्दर लग रहा था, ऐसी बात नहीं है कि वह इसे देख कर प्रसन्न नहीं थी, उसे बहुत मज़ा आ रहा था। उसे नाटक में बहुत आनन्द आ रहा था; लेकिन उसने देखा कि बेचारा मन्त्री देख न पाने के कारण किस हद तक दुःखी था। बिना कोई भाव लाये उसने अपनी कुर्सी पीछे सरका ली, और इस तरह पीछे को हो गयी मानों कुछ और सोच रही हो। वह इतनी अच्छी तरह खिसक गयी कि मन्त्री आगे आ गया और उसने पूरा नाटक अच्छी तरह से देख लिया। यह महिला जब पीछे की ओर खिसकी और उसने नाटक देखने की इच्छा छोड़ दी तो वह एक आन्तरिक आनन्द के भाव से, चीज़ों के लिए सब तरह की आसक्ति से मुक्ति और एक प्रकार की शान्ति से, अपने-आपको सन्तुष्ट कर लेने की जगह किसी और के लिए कुछ करने

के सन्तोष से भर गयी, इस हद तक कि उस साँझ के कार्यक्रम में नाटक देखने से उसे जितनी प्रसन्नता होती उससे कहीं अधिक प्रसन्नता हुई। यह एक सच्ची अनुभूति है, यह किसी किताब में पढ़ी हुई छोटी-सी कहानी नहीं है, यह ठीक उस समय की बात है जब वह महिला बौद्ध साधना का अध्ययन कर रही थी और उसका व्यवहार बुद्ध की उस शिक्षा के अनुसार था जिसका अनुभव करने की वह कोशिश कर रही थी।

और सचमुच यह अनुभूति इतनी ठोस थी, इतनी वास्तविक थी कि... दो सेकेण्ड के बाद, मञ्च का नाटक, संगीत, अभिनेता, दृश्य, चित्र आदि सब ग़ायब, बिलकुल गौण चीज़ों की तरह, बिलकुल नगण्य चीज़ों की तरह ग़ायब हो गये, जब कि अपने अन्दर किसी चीज़ पर प्रभुता पाने का, एक ऐसा काम करने का आनन्द जो शुद्ध रूप से स्वार्थपूर्ण नहीं था, ऐसे आनन्द ने उसकी सारी सत्ता को अनुपम स्थिर शान्ति से भर दिया—यह एक आनन्दमयी अनुभूति थी...। यह केवल निजी या व्यक्तिगत अनुभूति नहीं है। जो भी कोशिश करना चाहें इसे पा सकते हैं।

चैत्य सत्ता के साथ एक तरह का आन्तरिक सम्पर्क होता है, वह तब पैदा होता है जब व्यक्ति स्वेच्छा से किसी कामना को छोड़ देता है। और इसी कारण, वह कामना की तुष्टि की अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द प्राप्त करता है। और फिर, लगभग एक सामान्य नियम के रूप में, प्रायः बिना किसी अपवाद के, जब तुम किसी कामना को तुष्ट कर लेते हो, तो हमेशा कहीं-न-कहीं एक प्रकार का कड़वा स्वाद रह जाता है।

ऐसी कोई कामना नहीं जो सन्तुष्ट होने पर एक प्रकार की कटुता न छोड़े। जैसे अगर तुम बहुत मीठी मिठाई खा लो तो तुम्हारा मुँह कड़वाहट से भर जाता है। यह ऐसा ही है। तुम्हें सच्चाई के साथ प्रयास करना चाहिये। स्वाभाविक है कि कामना त्यागने का ढोंग करके उसे एक कोने में छिपाये न रखो, क्योंकि इससे बहुत दुःख होता है। तुम्हें सच्चाई और निष्कपटता के साथ प्रयास करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ४२-४३

जो कामना यह जानती है कि उसे कभी सन्तुष्ट नहीं किया जायेगा, वह एकदम ग़ायब हो जाती है। —श्रीमाँ

बच्चों में कामनाएँ—उनके साथ कैसे व्यवहार किया जाये

मधुर माँ, हम बच्चे की हमेशा माँगते रहने की आदत छुड़ाने में कैसे सहायता कर सकते हैं?

इसके कई तरीके हैं। लेकिन सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि कहीं तुम उसे अपने विचार या अपनी भावना मुक्त भाव से प्रकट करने से तो नहीं रोक रहे। क्योंकि अधिकतर लोग यही करते हैं। वे डाँटते और कभी-कभी दण्ड भी देते हैं; और इससे बच्चों को अपनी कामनाएँ छिपाने की आदत पड़ जाती है। लेकिन इससे वह उनसे छुटकारा नहीं पाता। अगर उससे हमेशा यही कहा जाये: "नहीं, तुम्हें यह चीज़ नहीं मिलेगी," तो उसके अन्दर मन की यह अवस्था जम जाती है: "जब तक मैं छोटा हूँ तब तक लोग मुझे कुछ भी नहीं देंगे! मुझे बड़े होने की राह देखनी होगी। जब मैं बड़ा हो जाऊँगा तो मैं जो चाहूँगा पा लूँगा।" बात ऐसी है। लेकिन इससे बच्चे उस चीज़ से छुटकारा नहीं पाते। बच्चे को पालना बड़ा मुश्किल काम है। एक तरीका यह है कि बच्चा जो माँगे देते चलो; और स्वभावतः, दूसरे ही क्षण वह कुछ और माँगेगा, क्योंकि यही तो नियम है, कामना का नियम: कभी सन्तुष्ट न हुआ जाये। अतः, अगर बच्चा समझदार है तो तुम उससे कह सकते हो: "तुम इस चीज़ के लिए इतना आग्रह कर रहे थे, अब तुम्हें इसकी परवाह भी नहीं रही। अब तुम कुछ और ही माँग रहे हो।" लेकिन अगर बच्चा बहुत होशियार हुआ तो कहेगा: "मुझे छुटकारा दिलाने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि मैं जो भी माँगूँ मुझे देते चलो।"

कुछ लोग सारे जीवन यह विचार बनाये रखते हैं। अगर उनसे अपनी कामनाओं को जीतने के लिए कहा जाये तो वे कहते हैं: "इसका सबसे सुगम उपाय है उन्हें सन्तुष्ट करना।" इस तरह का तर्क त्रुटिहीन मालूम होता है। लेकिन तथ्य यह है कि कामना के विषय को नहीं, कामना के आवेग को, उसकी गतिविधि को बदलने की ज़रूरत है। और इसके लिए बहुत-से ज्ञान की ज़रूरत है, और यह बहुत छोटे बच्चे के लिए मुश्किल है।

यह कठिन है। वास्तव में, उनमें तर्क करने की क्षमता नहीं होती; वे

कारण नहीं समझ पाते, इसलिए तुम उन्हें यह बात समझा नहीं सकते। तो, जब ऐसी स्थिति होती है तो माता-पिता उनसे कहते हैं : "चुप रहो, तुम एक मुसीबत हो!" इस तरह वे अपनी जान छुड़ाते हैं। पर यह कोई समाधान तो न हुआ। यह बहुत कठिन है। इसके लिए लगातार प्रयास और अटल धीरज की ज़रूरत होती है। कुछ लोग जीवन-भर ऐसे होते हैं; वे आजीवन बच्चों जैसे बने रहते हैं और उन्हें कोई युक्तियुक्त बात बताना असम्भव होता है। जैसे ही तुम उनसे कहो कि वे समझदार नहीं हैं, और उनकी कामनाओं को सन्तुष्ट करने के लिए उन्हें चीज़ें नहीं दी जा सकतीं, तो वे बस, यही समझते हैं : "ये लोग अच्छे नहीं हैं, यह व्यक्ति अच्छा नहीं है।" बस।

वास्तव में, तुम्हें आरम्भ में इस गति को उन चीज़ों की ओर मोड़ देना चाहिये जिन्हें सच्चे दृष्टिकोण से पाना ज़्यादा अच्छा है और जिन्हें पाना ज़्यादा कठिन है। अगर तुम कामना के इस आवेग को उस ओर मोड़ सको... उदाहरण के लिए, जब बच्चा कामनाओं से भरा हो, तो तुम उसे ज़्यादा ऊँचे प्रकार की कामना दे सको—बिलकुल क्षणिक सन्तोष देने वाली विशुद्ध भौतिक चीज़ों के लिए कामना की जगह—अगर तुम उसके अन्दर जानने की कामना, सीखने की कामना, एक विलक्षण व्यक्ति बनने की कामना जगा सको... इस तरह शुरू कर सकते हो। चूँकि ये चीज़ें करना मुश्किल है, तो, धीरे-धीरे वह इन चीज़ों के लिए अपने अन्दर इच्छा विकसित कर लेगा। या फिर, भौतिक दृष्टि से ही कोई ऐसी चीज़ करने की कामना दो जो ज़्यादा मुश्किल हो, उदाहरण के लिए, कोई ऐसा खिलौना बनाने के लिए दो जिसे बनाना मुश्किल हो, या उसे कोई खेल दो जिसमें धीरज की ज़रूरत हो, जिसमें बहुत अध्यवसाय की ज़रूरत हो।

अगर तुम उन्हें दिशा दे सको—इसके लिए बहुत विवेक और धीरज की ज़रूरत है, फिर भी, यह सम्भव है—अगर तुम उन्हें किसी ऐसे काम में लगा सको, तुम उन्हें बहुत कठिन खेलों में सफल होने या किसी ऐसे काम में लगा दो जिसमें बहुत ध्यान और एकाग्रता की ज़रूरत है या किसी ऐसी दिशा में चला दो जिसमें अध्यवसायपूर्ण संकल्प का काम हो, तो इसके परिणाम आ सकते हैं : उनका ध्यान अमुक चीज़ों की ओर से हटा कर अन्य चीज़ों की ओर लगा दो। इसके लिए सतत सावधानी की

ज़रूरत है—मैं नहीं कह सकती कि यह सबसे आसान तरीक़ा है, क्योंकि यह निश्चय ही आसान नहीं है—पर है सबसे अधिक प्रभावशाली। "ना" कहना कोई इलाज नहीं और "हाँ" कर देना भी कोई इलाज नहीं है; और स्वाभाविक है कि कभी-कभी, यह बहुत कठिन हो जाता है।

उदाहरण के लिए, मैं ऐसे लोगों को जानती थी जिनके बच्चे जो भी चीज़ देख लें, उसे खाना चाहते थे। उन्हें ऐसा करने दिया जाता था। इससे वे बहुत बीमार हो जाते थे। और इसके बाद वे उस चीज़ से घृणा करने लगते थे। लेकिन यह ज़रा ख़तरनाक है, क्यों, है न? कुछ ऐसे बच्चे होते हैं जो हर चीज़ को लेकर बेचैन हो उठते हैं। एक दिन एक बच्चे को दियासलाई की एक डिब्बी मिल गयी। उन्होंने यह कहने की जगह कि "इसे मत छुओ", उसे अपनी मरज़ी के मुताबिक करने दिया और उसने अपने-आपको जला लिया। इसके बाद उसने कभी दियासलाई नहीं छुई।

लेकिन यह ज़रा ख़तरनाक है। कुछ बच्चे एकदम अचेतन होते हैं और अपनी कामनाओं में बहुत साहसी होते हैं: उदाहरण के लिए, वे दीवार की मुँडेर पर या छत पर चलना चाहते हैं या पानी देखते ही उसमें डुबकी लगाना चाहते हैं या नदी में गोता मारना चाहते हैं... कभी-कभी यह बहुत कठिन हो जाता है... या फिर, कुछ बच्चों को सड़क पार करने का पागलपन होता है: हर बार मोटर आती देख कर... उसका रास्ता काटने की कोशिश करते हैं। अगर उन्हें यह करने दिया जाये, तो किसी दिन यह परीक्षण घातक हो सकता है।...

यह बहुत कठिन समस्या है। एक आदमी था जिसके शिक्षा में स्वाधीनता के बारे में कुछ ऐसे ही विचार थे, उसने मुझे बताने के लिए सिद्धान्त बनाये कि व्यक्तिगत स्वाधीनता का मान करना चाहिये, यहाँ तक कि नये लोगों के लिए पिछले अनुभवों का कभी उपयोग न करना चाहिये, हमें उन्हें अपने सब परीक्षण अपने-आप करने के लिए छोड़ देना चाहिये। यह चीज़ बहुत दूर तक जा पहुँची और उन लोगों ने मेरी बड़ी समालोचना की, क्योंकि मैं दुर्घटनाओं को रोकने की कोशिश कर रही थी। उन्होंने मुझसे कहा: "आप इन्हें रोक कर बड़ी ग़लती कर रही हैं।" तो मैंने कहा: "अगर कोई मर जाये तो?"—"तो इसका मतलब होगा उसे मरना था, आपको उनकी नियति और उनके विकास की आज़ादी में दख़ल देने का कोई अधिकार

नहीं है। वे बेवकूफ़ियाँ करना चाहते हैं, तो उन्हें बेवकूफ़ियाँ करने दो। जब उनकी समझ में आ जायेगा कि ये बेवकूफ़ियाँ हैं, तो वे नहीं करेंगे।" और ऐसे उदाहरण हैं जब व्यक्ति निश्चय ही उन्हें फिर से नहीं करता, क्योंकि वह सीमा से पार निकल जाता है।

अगर तुम इसका कोई सिद्धान्त बनाना चाहो तो यह एक बहुत ही कठिन समस्या है। हर मामला एकदम अलग होता है और हर एक के लिए अलग प्रक्रिया की ज़रूरत होती है। और सचमुच, अगर तुम बच्चे को अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देना चाहते हो, तो तुम्हें अपना सारा समय उसी में लगा देना होगा। तुम और कुछ भी न कर सकोगे क्योंकि यह मानते हुए भी कि तुम्हें प्रकट रूप से उस पर निगरानी नहीं रखनी चाहिये, लेकिन ठीक समय पर ठीक क्रिया करने के लिए, उसके जाने बिना भी, उसके ऊपर नज़र रखनी चाहिये। तब तुम और कुछ न कर सकोगे।

तो, शायद, हमें एक बीच की अवस्था खोज निकालनी चाहिये जो इन दोनों छोरों के बीच हो : पहली, जिसमें हमेशा उस पर निगरानी रखी जाये, और दूसरी, जिसमें उसे अपनी मरज़ी के मुताबिक करने के लिए पूरी छूट हो, उसे हो सकने वाली दुर्घटनाओं के बारे में भी सचेत न किया जाये। हर क्षण समझौता! कठिन है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४६४-६८

अगर हर एक स्वयं अपने ऊपर प्रभुत्व पाने और अपने आवेगों को नियन्त्रण में रखने का निश्चय कर ले तो स्थिति अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

जब लोग अपनी चेतना को विक्षुब्ध रहने देते हैं तो उनका जीवन भी विक्षुब्ध बन जाता है।

पहले अपने-आपको पूर्णतः जानना सीखो, फिर अपने-आप पर पूर्ण नियन्त्रण रखना सीखो। तुम हर क्षण अभीप्सा करके यह पा सकते हो। आरम्भ करने के लिए कभी 'बहुत जल्दी' नहीं होती और जारी रखने के लिए कभी 'बहुत देर' नहीं होती।

आवेगशील पुरुष जो अपने ऊपर नियन्त्रण नहीं कर सकता, उसका जीवन अव्यवस्थित होता है। —*'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २७९*

"अभिरुचियाँ न रखने" का अर्थ

यहाँ एक प्रश्न है जो मुझसे पूछा गया है—ऐसा लगता है कि बहुत-से लोग अपने-आपसे यह प्रश्न पूछते रहते हैं! जो कुछ लिखा है वह मैं तुम्हारे सामने पढ़ने जा रही हूँ, फिर बाद में तुमसे बात करूँगी। कितना विश्वासोत्पादक लगता है यह, यह प्रश्न!

"अभिरुचियाँ न रखने" का हम क्या अर्थ समझें? क्या हमें अव्यवस्था के बदले व्यवस्था, गन्दगी के बदले स्वच्छता आदि को पसन्द नहीं करना चाहिये? अभिरुचियाँ न रखना—इसका अर्थ क्या यह है कि सबके साथ एक ही ढंग से व्यवहार करना चाहिये?

अब, यह है मेरा उत्तर : यह शब्दों के साथ खेलना है! जिसे तुम अभिरुचि कहते हो उसे मैं चुनाव कहती हूँ। मनुष्य को चुनाव करने की सतत स्थिति में रहना चाहिये; अपने जीवन के प्रत्येक पल तुम्हें नीचे खींचने वाली और ऊपर उठाने वाली चीज़ों के बीच, प्रगति कराने वाली और पीछे ले जाने वाली चीज़ों के बीच एक चुनाव करना होता है; पर इसे मैं कोई अभिरुचि रखना नहीं कहती, इसे मैं एक चुनाव करना कहती हूँ—चुनाव करना, चुनना कहती हूँ। प्रत्येक क्षण मनुष्य को चुनना होता है, यह अनिवार्य है, और सफ़ाई तथा गन्दगी के बीच, चाहे वह नैतिक हो या भौतिक, सदा के लिए चुनाव करने की अपेक्षा यह अनन्तगुना अधिक अनिवार्य होता है। चुनाव : हर क्षण चुनाव तुम्हारे सामने रहता है, और तुम एक पग नीचे जा सकते हो अथवा एक पग ऊपर चढ़ सकते हो, एक पग पीछे हट सकते हो अथवा एक पग आगे बढ़ सकते हो; और चुनाव करने की यह स्थिति अवश्य ही सतत, अविच्छिन्न बनी रहनी चाहिये, तुम्हें कभी सो नहीं जाना चाहिये। पर यह वह चीज़ नहीं है जिसे मैं अभिरुचि रखना कहती हूँ। अभिरुचियाँ—यथार्थ में चुनाव नहीं हैं। कोई ऐसी वस्तु होती है जिसके प्रति तुम्हें सहानुभूति या विद्वेष-भावना, विकर्षण या आकर्षण होता है, और अन्ध-भाव से, अकारण, तुम इस वस्तु के साथ आसक्त हो जाते हो; अथवा, जब तुम्हें कोई समस्या हल करनी हो तो तुम इस समस्या या

इस कठिनाई के लिए कोई एक या दूसरा विशेष प्रकार का ही समाधान पसन्द करोगे। परन्तु वह चुनाव करना बिलकुल ही नहीं है—क्या तुम नहीं देखते कि यहाँ किसी अत्यन्त सत्य वस्तु का कोई प्रश्न ही नहीं है, यहाँ तो एक अभिरुचि रखने-भर की बात है। मेरे लिए इस शब्द का अर्थ बहुत स्पष्ट है : अभिरुचि एक अन्धी चीज़ है, एक प्रकार का आवेग, एक तरह की आसक्ति, एक अचेतन क्रिया है, और यह सामान्यतया भयानक रूप में दुराग्रही होती है।

तुम किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों के सम्मुख आ उपस्थित हुए हो; कोई-न-कोई बात हो सकती है, और स्वयं तुम्हारे अन्दर एक अभीप्सा है, तुम पथ-प्रदर्शन की याचना करते हो, परन्तु तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज़ है जो एक विशेष प्रकार का उत्तर पाना, एक विशेष प्रकार का संकेत पाना, अथवा किसी दूसरे तरीक़े से नहीं, इस विशेष तरीक़े से ही घटना का होना पसन्द करती है; परन्तु इस सबमें चुनाव का कोई प्रश्न नहीं है, यह एक अभिरुचि है। और जब तुम्हारी अभीप्सा या प्रार्थना का उत्तर तुम्हारी कामना के अनुकूल नहीं होता, यह अभिरुचि तुम्हें दुःखी बना देती है, तुम्हें इस उत्तर को स्वीकार करना कठिन लगता है, उसे स्वीकार करने के लिए तुम्हें संघर्ष करना पड़ता है। इसके विपरीत, यदि तुम्हारे अन्दर कोई अभिरुचि नहीं होती तो तुम्हारी अभीप्सा का उत्तर जो भी हो, जिस क्षण वह आता है प्रसन्नतापूर्वक, स्वाभाविक रूप में, एक सच्चे उत्साह के साथ तुम उसके साथ चिपक जाते हो। अन्यथा जो कुछ आता है, तुम्हारी अभीप्सा के उत्तर में जो भी निर्णय आता है उसे स्वीकार करने के लिए तुम्हें एक प्रयास करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। तुम चाहते हो, इच्छा करते हो, पसन्द करते हो कि चीज़ें इस तरह हों, अन्यथा नहीं। पर वास्तव में, यह चुनाव नहीं है। चुनाव की स्थिति हर क्षण रहती है, हर क्षण तुम एक चुनाव के सम्मुख होते हो : ऊपर चढ़ने या नीचे जाने के चुनाव, प्रगति करने या पीछे हटने के चुनाव के सम्मुख उपस्थित रहते हो। मगर इस चुनाव का यह अभिप्राय नहीं होता कि तुम वस्तुओं को इस प्रकार का या उस प्रकार का होना पसन्द करते हो; यह प्रत्येक क्षण का एक तथ्य होता है, एक **मनोभाव** होता है जिसे तुम अपनाते हो।

चुनाव का अर्थ है एक निर्णय और कार्य। अभिरुचि है कामना। चुनाव

किया जाता है और करना **चाहिये**, और यदि वह सचमुच एक चुनाव है तो वह परिणामों की कोई परवाह किये बिना, किसी फल की आशा किये बिना किया जाता है। तुम चुनते हो; तुम अपने आन्तरिक सत्य, अपनी उच्चतम चेतना के अनुसार चुनते हो; चाहे जो भी हो उससे तुम अछूते रहते हो, तुमने अपना चुनाव, सच्चा चुनाव कर लिया है, और जो कुछ होता है वह तुम्हारी चिन्ता का विषय नहीं है। जब कि, इसके विपरीत, यदि तुम्हारे अन्दर अभिरुचियाँ हैं तो तुम अपनी अभिरुचि के अनुसार एक या दूसरी तरह से चुनाव करोगे, तुम्हारी अभिरुचि तुम्हारे चुनाव को विकृत कर देगी : वह हिसाब-किताब, मोल-तोल होगा, तुम इस भावना के साथ कार्य करोगे कि अमुक चीज़ अवश्य होनी चाहिये क्योंकि उसी को तुम पसन्द करते हो और इस कारण नहीं कि वही सत्य है, करने-योग्य यथार्थ वस्तु है। अभिरुचि परिणामों के साथ बँधी होती है, फल की दृष्टि से कार्य करती है, चाहती है कि वस्तुएँ एक विशेष प्रकार से हों और अपनी इच्छा पूरी करने के लिए कार्य करती है; और तब वह सभी प्रकार की चीज़ों के लिए दरवाज़ा खोल देती है। चुनाव परिणाम से स्वतन्त्र होता है। और निश्चय ही, प्रत्येक मुहूर्त मनुष्य चुनाव कर सकता है, वह प्रत्येक क्षण चुनाव करने की आवश्यकता के सम्मुख उपस्थित होता है। और वास्तव में तुम अच्छे ढंग से, पूर्ण सच्चाई के साथ तभी चुनाव कर सकते हो जब तुम्हें अपने चुनाव के परिणाम में नहीं, बल्कि यथार्थ में, चुनाव के सत्य में दिलचस्पी होती है। अगर तुम परिणाम को दृष्टि में रख कर चुनाव करते हो तो वह तुम्हारे चुनाव को मिथ्या बना देता है।...

जहाँ तक प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक ही ढंग से बर्ताव करने की बात है, वह तो और भी बुरी तरह उलझा हुआ है! यह उस तरह की उलझन है जिसे मनुष्य यह कह कर पैदा करता है कि प्रत्येक मनुष्य के साथ भगवान् को एक ही ढंग से बर्ताव करना चाहिये। इसलिए संसार में अनेकता को होने देने का, एक समान दो व्यक्तियों को न होने देने का कष्ट उठाने का कोई मूल्य नहीं रहेगा; क्योंकि यह अनेकता के सिद्धान्त का ही एकदम खण्डन करता है।

संसार में जो कुछ है तुम उस सबके लिए मेल-जोल, एकता, प्रेम, पूर्ण करुणा का एक-सा ही गहरा मनोभाव रखने की अभीप्सा कर सकते हो—

यदि तुम नहीं रखते तो रखना चाहिये; परन्तु यह मनोभाव भी प्रत्येक मामले में अलग-अलग तरीके से, उस मामले के सत्य तथा उसकी आवश्यकता के अनुसार प्रयुक्त होगा। जिसे कर्म का प्रेरक हेतु अथवा मूल स्रोत कह सकते हैं वह एक ही होता है, पर प्रत्येक मामले और प्रत्येक मामले के गभीरतर सत्य के अनुसार वह कर्म सम्पूर्ण रूप में तथा नितान्त विपरीत भी हो सकता है। परन्तु ठीक इसी कारण, मनुष्य में उच्चतम, गभीरतम, अत्यन्त मौलिक रूप में सच्चा मनोभाव होना चाहिये, वह मनोभाव होना चाहिये जो सभी बाहरी सन्दिग्धताओं से मुक्त हो। तब मनुष्य प्रत्येक क्षण केवल मौलिक सत्य को ही नहीं, बल्कि कर्म के सत्य को भी देख सकेगा; और प्रत्येक मामले में यह भिन्न होता है। और फिर भी, जिसे हम "मनोवृत्ति" —यद्यपि यह एक अपर्याप्त शब्द है—अथवा चेतना की स्थिति कह सकते हैं जिसमें मनुष्य कार्य करता है, मूलतः वही होती है।

परन्तु यह बात तब तक समझ में नहीं आ सकती जब तक कि मनुष्य वस्तुओं की वास्तविक गहराई में नहीं प्रवेश करता तथा उन्हें उच्चतम शिखरों से नहीं देखता। और तब वह ज्योति और चेतना के एक केन्द्र के जैसा होता है जो इतना अधिक ऊँचा या इतना अधिक गहरा होता है कि एक ही समय में सभी वस्तुओं को, केवल उनके सार-तत्त्व में ही नहीं बल्कि उनकी अभिव्यक्ति में भी, देखा जा सकता है; और यद्यपि चेतना का केन्द्र एक ही है, पर कार्य उतना ही विभिन्न होगा जितनी विभिन्न अभिव्यक्ति होगी : यह भागवत सत्य की, उसकी अभिव्यक्ति के अन्दर, संसिद्धि होगी। अन्यथा यह संसार के समस्त वैविध्य को दबा देना और उसे मूल अनभिव्यक्त 'एकत्व' के अन्दर वापस ले आना होगा, क्योंकि केवल अनभिव्यक्ति के अन्दर ही 'एकम्' के द्वारा 'एकम्' अभिव्यक्त होता है। परन्तु जैसे ही हम अभिव्यक्ति में प्रवेश करते हैं, 'एकम्' 'बहु' के रूप में व्यक्त होता है, और 'बहु' का अर्थ है, कर्मों और पद्धतियों का एक समवाय।

अतः, संक्षेप में, परिणामों की परवाह किये बिना चुनाव करना चाहिये, और अभिव्यक्ति के अन्दर प्रकट बहुविधता के सत्य के अनुसार कर्म का सम्पादन करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ४८२-८६

कामना और आवश्यकता में भेद कैसे किया जाये

कामना और सच्ची आवश्यकता के बीच सीमा-रेखा का पता पाना बहुत कठिन है (निःसन्देह, यौगिक आदर्श तो यह है कि कभी कोई आवश्यकता अनुभव ही न की जाये और इसलिए कभी किसी चीज़ की कामना ही न हो), किन्तु यह लेख उन सभी सद्भावनापूर्ण लोगों के लिए लिखा गया है जो अपने-आपको जानने और संयमित करने का प्रयास करते हैं। और यहीं वास्तव में हमारे सामने एक ऐसी समस्या आ उपस्थित होती है जो हमसे अपरिमित सत्यनिष्ठा की माँग करती है, क्योंकि जीवन के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करने का प्राणसत्ता का सबसे पहला तरीक़ा ही है कामना का—और फिर ऐसी चीज़ें तो हैं ही जो आवश्यक होती हैं। किन्तु यह कैसे जाना जाये कि ये चीज़ें वास्तव में आवश्यक हैं, उनके लिए कोई कामना नहीं है?... इसके लिए हमें बहुत, बहुत ही ध्यानपूर्वक आत्म-निरीक्षण करना होगा। यदि तुम्हारे अन्दर कोई चीज़ ऐसी हो जो एक नन्हें से तीव्र स्पन्दन के जैसी अनुभूत होती हो तो तुम निश्चित रूप से मान सकते हो कि तुम्हारे अन्दर कामना दुबकी हुई है। एक उदाहरण लें, तुम कहते हो, "यह भोजन मेरे लिए आवश्यक है",—तुम मानते हो, कल्पना करते हो, सोचते हो कि तुम्हें अमुक चीज़ की आवश्यकता है और उस चीज़ को पाने के लिए आवश्यक उपाय करते हो। यह एक आवश्यकता है या कामना, यह जानने के लिए, तुम्हें अपने-आपको बहुत ध्यान से देखना होगा और स्वयं से पूछना होगा, "यदि यह चीज़ मुझे न मिल सकी तो क्या होगा?" तब, यदि तत्काल यह उत्तर मिले कि, "ओह, यह तो बहुत बुरा होगा", तो निश्चित समझो कि यह कामना ने सिर उठाया है। हर चीज़ के लिए यही बात है। प्रत्येक समस्या के समय तुम पीछे हटो, अपने-आप पर दृष्टिपात करो और पूछो, "देखूँ, यह चीज़ मुझे मिलती है या नहीं?" उस क्षण यदि तुम्हारे अन्दर कोई चीज़ प्रसन्नता से उछल पड़ती है तो तुम निश्चित हो सकते हो कि यह कामना है। इसके विपरीत, यदि कोई चीज़ तुमसे कहती है, "ओह, मुझे यह चीज़ नहीं मिलने वाली है", और तुम बहुत उदास अनुभव करते हो, तो यह चीज़ भी कामना है।

यदि तुम चाहते हो कि प्राणिक सत्ता तुम्हें धोखा न दे तो तुम्हें केवल

बहुत सावधान ही नहीं रहना होगा बल्कि तुम्हारी सत्यनिष्ठा को प्रायः चमत्कारिक होना होगा—मैंने तुम्हें निरुत्साहित करने के लिए "चमत्कारिक" शब्द का व्यवहार नहीं किया है; इसके विपरीत, तुम्हारे अन्दर सत्यनिष्ठा के लिए और भी अधिक अभीप्सा जगाने के लिए कहा है।

अब, कुछ लोग ऐसे होते हैं जो हमेशा अपनी कामनाओं को ही अपनी आवश्यकता समझते हैं... वे बहुत बड़ी संख्या में हैं। उन्हें पूरा विश्वास होता है कि इसके या उसके बिना वे नहीं जी सकते: "यह असम्भव है, हम उसके बिना नहीं जी सकते... मैं बीमार पड़ जाऊँगा या कोई बहुत दुःखदायी बात मेरे साथ हो जायेगी या मैं अपना कार्य नहीं कर सकूँगा। यह असम्भव है, यदि मुझे यह चीज़ न मिले तो मैं अपना काम नहीं चला सकता।" तो, इन लोगों के लिए पहला पग है एक छोटा-सा परीक्षण करने का प्रयास करना (यदि वे सच्चे हों): "अच्छा, मैं वह वस्तु नहीं लेता, देखें क्या होता है।" यह बड़ा मज़ेदार परीक्षण है। और मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूं कि एक हज़ार में से ९९९ बार, कुछ दिनों के बाद मनुष्य अपने-आपसे पूछता है, "परन्तु मुझ अभागे ने ऐसा क्यों सोचा था कि मुझे इस चीज़ की इतनी बड़ी आवश्यकता है, मैं भली-भाँति इसके बिना काम चला सकता हूँ!" बस, यही बात है। और इस तरह, थोड़ा-थोड़ा करके, मनुष्य आगे बढ़ता है।

यह प्रशिक्षण का—अपने-आपको शिक्षित करने का प्रश्न है। और जितना ही शीघ्र आरम्भ किया जाये उतना ही आसान होता है। जब मनुष्य एकदम छोटी उम्र में आरम्भ करता है तो यह बहुत आसान हो जाता है, क्योंकि तब मनुष्य अपनी आन्तरिक प्रतिक्रियाओं का अभ्यस्त हो जाता है और इसलिए बुद्धिमानी और विवेक के साथ कार्य कर सकता है—इसके विपरीत, जो लोग बचपन से ही अपनी सभी कामनाओं को आवश्यकताएँ या अत्यावश्यक वस्तुएँ मानने के अभ्यस्त हैं, और जिन्होंने अपने-आपको तीव्र उत्साह के साथ उनके अन्दर झोंक दिया है, उनके लिए रास्ता बहुत अधिक कठिन है, क्योंकि सबसे पहले उन्हें विवेक-शक्ति आयत्त करनी होगी और कामना को उससे पृथक् करना होगा जो कामना नहीं है...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ५८-५९, ४६१-६२

अभीप्सा और कामना में भेद

अभीप्सा में एक ऐसी चीज़ होती है जिसे मैं निःस्वार्थ ज्योति कह सकती हूँ जो कामना के अन्दर नहीं होती। तुम्हारी अभीप्सा—तुम्हारा अपनी ओर लौटना नहीं है—कामना में मनुष्य हमेशा ही अपनी ओर लौटता है। विशुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, अभीप्सा है आत्मदान, सर्वदा ही, जब कि कामना सदा एक ऐसी चीज़ होती है जिसे मनुष्य अपनी ओर खींचता है; अभीप्सा एक ऐसी चीज़ है जो अपने-आपको दे देती है, आवश्यक रूप से विचार के रूप में नहीं देती बल्कि देती है क्रिया में, स्पन्दन में, प्राणिक आवेग में।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १६०-६१

अगर व्यक्ति को सच्ची, निःस्वार्थ और निष्कपट अभीप्सा का अनुभव हो जाये तो वह कोई प्रश्न पूछ ही नहीं सकता क्योंकि अभीप्सा का स्पन्दन प्रदीप्त और अचञ्चल होता है, उसका कामना के स्पन्दन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता जो आवेशभरा, अन्धकारभरा और बहुधा उग्र होता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४६१-६२

हम यह कैसे जान सकते हैं कि हमारे कार्य, हमारे विचार और हमारी अभीप्साएँ प्राणिक कामनाओं से रँगे नहीं हैं, यद्यपि वे हमारी सामान्य बुद्धि को ठीक मालूम होते हैं?

यह **आन्तरिक सच्चाई** का सवाल है। सामान्य बुद्धि निर्णायक नहीं है क्योंकि वह निचले स्तर की मानसिक क्रिया है।

और फिर, जानने का एक बहुत सरल उपाय है। तुम बस यह कल्पना करो कि तुम जो करना चाहते हो वह न हो सकेगा और अगर इस कल्पना से ज़रा भी बेचैनी पैदा होती है तो तुम कामना की उपस्थिति के बारे में निश्चित हो सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ३८६-८७

योग तथा वासना

योग पवित्र करने की प्रक्रिया में उन सभी वासनाओं और इच्छाओं को, जो तुममें छिपी पड़ी हैं, उघाड़ देगा और उनको ऊपरी तल पर उठा लायेगा। और तुम्हें यह सीखना होगा कि न तो इन चीज़ों को छिपाया जाये और न इनकी अवहेलना की जाये। तुम्हें इन सब चीज़ों का मुक़ाबला करना होगा, इन पर विजय प्राप्त करनी होगी और इन्हें एक नये साँचे में ढालना होगा।

बहरहाल, योग का पहला प्रभाव होता है मानसिक संयम को हटा देना, इससे साधक की वे अतृप्त वासनाएँ, जो उसके अन्दर सोयी पड़ी रहती हैं, हठात् मुक्त होकर ऊपर उभड़ आती हैं और उस पर आक्रमण करती हैं। जब तक इस मानसिक संयम का स्थान भागवत संयम नहीं ले लेता तब तक संक्रमण-काल रहता है और इस काल में तुम्हारी सच्चाई और समर्पण कसौटी पर कसे जाते हैं। काम-वासना और इस प्रकार के दूसरे आवेशों को बल मिलने का प्रायः यह कारण होता है कि लोग इन पर बहुत अधिक ध्यान देते हैं, बहुत तीव्रता के साथ इनका विरोध करते हैं और निग्रह द्वारा इन्हें रोके रखना, अपने अन्दर ही किसी तरह दबाये रखना चाहते हैं। परन्तु तुम किसी चीज़ के बारे में जितना अधिक सोचते हो और कहते हो : "मैं उसे नहीं चाहता, मैं उसे नहीं चाहता," उतना ही अधिक उससे बँधते जाते हो। तुम्हें करना यह चाहिये कि उस चीज़ को अपने से दूर रखो, उससे सम्बन्ध तोड़ लो, उस पर कम-से-कम ध्यान दो और, इस पर भी यदि वह कभी तुम्हारे चिन्तन में आये तो उससे उदासीन और निर्लिप्त रहो।

योग का दबाव पड़ने के कारण जो इच्छाएँ और वासनाएँ ऊपर उभड़ आती हैं उनका अनासक्त रह कर, शान्ति के साथ मुक़ाबला करना चाहिये, यह समझना चाहिये कि ये विजातीय वस्तुएँ हैं अथवा बाह्य जगत् की चीज़ें हैं जिनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्हें भगवान् को सौंप देना चाहिये ताकि भगवान् उनको अपने हाथ में ले लें और उनका रूपान्तर कर दें।

नैतिकता का विचार यहाँ तक जाता है कि वह कहता है कि कामनाएँ भी अच्छी या बुरी होती हैं और वह अच्छी को स्वीकारने और बुरी को

त्यागने के लिए कहता है। परन्तु आध्यात्मिक जीवन की तो यह माँग है कि तुम कामना मात्र का त्याग करो। उसका नियम है कि जो गतियाँ भगवान् से दूर ले जाती हों उन्हें अपने से दूर करो; इसलिए नहीं कि वे अपने-आपमें बुरी हैं,—कारण, वे किसी और के लिए अथवा किसी दूसरे क्षेत्र में अच्छी हो सकती हैं,—बल्कि इसलिए कि उनका सम्बन्ध उन आवेगों या शक्तियों से है जो अँधेरी और अज्ञानमयी होने के कारण भगवान् के पास पहुँचने के मार्ग में बाधा पहुँचाती हैं। सभी कामनाएँ, चाहे अच्छी हों या बुरी, इसी व्याख्या के अन्तर्गत हैं, कारण, कामना मात्र का उद्भव अँधेरी प्राणिक सत्ता और उसके अज्ञान से होता है। दूसरी ओर, तुम्हें उन सब गतियों को स्वीकारना चाहिये जो भगवान् के सम्पर्क में लाने वाली हों। परन्तु तुम उन्हें इसलिए नहीं स्वीकारते कि वे अपने-आपमें अच्छी हैं, बल्कि इसलिए कि वे तुम्हें भगवान् के पास पहुँचाती हैं। अतएव, जो कुछ तुम्हें भगवान् के पास ले जाता हो उसे स्वीकार करो और जो कुछ उनसे दूर ले जाता हो उसका त्याग करो, किन्तु यह मत कहो कि यह अच्छा है और वह बुरा है अथवा अपने दृष्टिकोण को दूसरे पर थोपने की चेष्टा मत करो; क्योंकि जिस चीज़ को तुम बुरा ठहराते हो वही चीज़ तुम्हारे पड़ोसी के लिए, जो दिव्य जीवन को संसिद्ध करने का प्रयास नहीं कर रहा है, अच्छी हो सकती है।

... तुम यदि योग-सम्बन्धी अपनी धारणाओं में प्रगति की भावना को रखो और यदि यह स्वीकार करो कि सारा विश्व ही एक प्रगति-धारा में चल रहा है तो तुम्हें कामना के विषय को ही बदल देना होगा; जो वस्तुएँ बाह्य, कृत्रिम, ऊपरी और अहंभावपूर्ण हों उनकी ओर मुड़ने के बदले तुम्हें इस (कामना) को सिद्धि की एक शक्ति के रूप में सत्य की ओर प्रयुक्त अभीप्सा के साथ जोड़ देना होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ७-८, १३४-३५, २०७

तुम अपने-आपको कमज़ोर बना कर नहीं, बल्कि बल, सन्तुलन तथा शान्ति में रह कर ही अपनी वासनाओं पर विजय पा सकते हो।

—श्रीमाँ

निष्काम कर्म

मधुर माँ, यहाँ लिखा है : "कर्मयोग के पथ पर कर्म ही वह ग्रन्थि है जिसे हमें सबसे पहले खोलना होगा।"

(श्रीअरविन्द, 'योग-समन्वय' से)

कर्म क्यों ग्रन्थि बन जाता है?

क्योंकि मनुष्य कर्म से आसक्त होता है। वह ग्रन्थि अहं की ग्रन्थि है। तुम कामना के कारण कर्म करते हो। श्रीअरविन्द ऐसा कहते हैं, कहते हैं न? कर्म करने का साधारण तरीका किसी-न-किसी रूप में कामना से—किसी कामना से, किसी आवश्यकता से—बँधा होता है, और बस वही गाँठ है। यदि तुम केवल कामना की सन्तुष्टि के लिए कर्म करते हो—कामना जिसे तुम आवश्यकता या प्रयोजन या कोई दूसरी चीज़ कहते हो, परन्तु वास्तव में, यदि तुम उस बात की एकदम तह में चले जाओ तो देखोगे कि वह किसी कामना का प्रवेग है जो तुमसे कर्म कराता है—हाँ, यदि तुम कामना के आवेग के प्रभाव के अधीन कार्य करते हो तो अगर तुम कामना को निकाल दोगे तो काम न कर सकोगे।

और बस, यही है पहला उत्तर जो लोग तुम्हें देते हैं। जब उनसे कहा जाता है : "कर्मफल से आसक्त हुए बिना कर्म करो, यह चेतना रखो कि सचमुच तुम कार्य नहीं कर रहे बल्कि स्वयं भगवान् कार्य कर रहे हैं", तो साढ़े निन्यानबे प्रतिशत लोग यह उत्तर देते हैं : "परन्तु यदि मैं ऐसा अनुभव करूँ तो मैं फिर हिल-डुल भी नहीं सकता! तब मैं कोई काम ही न करूँगा; सर्वदा कोई आवश्यकता, कोई कामना, कोई व्यक्तिगत प्रवृत्ति ही किसी-न-किसी रूप में मुझसे कार्य कराती है।" अतएव, श्रीअरविन्द कहते हैं : यदि तुम *गीता* की इस शिक्षा को जीवन में संसिद्ध करना चाहते हो तो सबसे पहले तुम्हें इस ग्रन्थि को ढीला करना होगा, वह ग्रन्थि जो कर्म को कामना से जोड़ती है—वे दोनों इतनी अच्छी तरह बँधे हुए होते हैं कि यदि तुम एक को हटा लो तो तुम दूसरे को भी हटा लोगे। वे कहते हैं कि ग्रन्थि को ढीला करना होगा ताकि मनुष्य कामना को तो दूर हटा दे पर काम करना जारी रखे।

और यह एक तथ्य है; यही वह चीज़ है जिसे करना होगा। ग्रन्थि को ढीला करना ही होगा। यह एक मामूली आन्तरिक शल्यक्रिया है जिसे मनुष्य बहुत आसानी से कर सकता है; और जब वह यह क्रिया कर लेता है, वह अनुभव करता है कि वह पूर्णतः बिना किसी व्यक्तिगत प्रयोजन के कार्य करता है, बल्कि अपनी अहंकारपूर्ण शक्ति से उच्चतर और बलवत्तर किसी 'शक्ति' से परिचालित होकर करता है। और तब मनुष्य कार्य तो करता है, पर कर्मफल उस पर वापिस नहीं आते।

यह चेतना का एक अद्‌भुत और बिलकुल ठोस व्यापार है। जीवन में तुम कोई कार्य करते हो—कोई भी कर्म तुम करते हो, भला, बुरा, नगण्य उससे कुछ नहीं आता-जाता—वह चाहे जो भी हो, वह तुरत परिणामों की एक शृंखला उत्पन्न कर देता है। वास्तव में तुम एक विशेष परिणाम पाने के लिए उसे करते हो, बस उसी के लिए तुम करते हो, उसी परिणाम की दृष्टि से तुम करते हो। उदाहरण के लिए, यदि मैं इस तरह 'माइक' लेने के लिए अपना हाथ बढ़ाती हूँ तो मैं एक परिणाम की, समझे, 'माइक' में ध्वनि उत्पन्न करने की, आशा करती हूँ। और इससे हमेशा, हमेशा ही एक परिणाम उत्पन्न होता है। परन्तु तुम यदि ग्रन्थि को ढीला कर दो और उस 'शक्ति' को जो ऊपर से आती है—अथवा किसी अन्य स्थान से आती है —अपने माध्यम से काम करने दो और अपने द्वारा कार्य होने दो तो उस समय तुम्हारे कर्म के परिणाम तो होते हैं पर वे अब तुम्हारे पास नहीं आते, क्योंकि वास्तव में तुमने कार्य का प्रारम्भ नहीं किया था, बल्कि ऊपर से आने वाली 'शक्ति' ने किया था। और परिणाम ऊपर चले जाते हैं, अथवा वे उस 'शक्ति' के द्वारा निर्दिष्ट, इच्छित, निर्देशित और नियन्त्रित होते हैं जिसने तुमसे कार्य कराया था। और तुम **पूर्ण रूप से** स्वयं को मुक्त अनुभव करते हो, जो कुछ तुमने किया है उसके परिणाम तुम पर लौट कर नहीं आते।

ऐसे लोग हैं जिन्हें यह अनुभव हुआ है—परन्तु ये चीज़ें सबसे पहले एक झलक के रूप में, एक मुहूर्त के लिए आती हैं और फिर वापिस चली जाती हैं; वास्तव में जब मनुष्य रूपान्तर के लिए पूरी तरह तैयार हो जाता है केवल तभी ये आकर सदा के लिए बस जाती हैं...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ८५-८७

निष्काम अभीप्सा

"शेष भागवत चेतना के लिए अभीप्सा करो, लेकिन करो स्थिर और गहरी अभीप्सा के साथ। वह तीव्र होने के साथ-साथ स्थिर हो सकती है, लेकिन अधीर, बेचैन या राजसिक उत्सुकता से भरी न हो।
(श्रीअरविन्द, 'योग के आधार' पुस्तक से)

... यहाँ श्रीअरविन्द जिस चीज़ की बात कर रहे हैं, वह सचमुच अभीप्सा है। यह किसी ऐसे के बारे में है जो आध्यात्मिक जीवन के लिए अभीप्सा करता तो है पर करता है बहुत उग्र आवेग के साथ; और स्वाभाविक है कि इससे सब कुछ उलट-पुलट हो जाता है। इसके अतिरिक्त, उसे जो परिणाम मिलता है—अगर उसे कोई परिणाम मिल भी जाये—तो वह परिणाम बहुत ज़्यादा मिश्रित होता है; वह गँदला होता है और जैसा वे कहते हैं, बिलकुल अशुद्ध और साधारण होता है। वे जिसे "राजसिक उत्सुकता" कहते हैं, उसमें और तीव्रता में गड़बड़ नहीं करनी चाहिये, क्योंकि तीव्रता बहुत विशाल, बहुत शान्त और बहुत शुद्ध हो सकती है, और अभीप्सा को काफ़ी बल दे सकती है। लेकिन इसका राजसिक गतिविधि या कामना से कोई सम्बन्ध नहीं है।

और, उदाहरण के लिए, तुम इसे इस तरह समझ सकते हो: अगर तुम्हारे अन्दर अभीप्सा है, मान लो, अचानक तुम प्रगति की सम्भावना के बारे में सोचो, और तुम्हारे अन्दर प्रगति के लिए अभीप्सा हो; लेकिन तुम्हारी अभीप्सा के साथ कामना मिली हो तो तुम्हारे अन्दर प्रगति से मिलने वाली शक्तियों, या इससे मिलने वाले महत्त्व या अपने जीवन की परिस्थितियों में सुधार की कामना होगी। तुम जाकर तुरन्त अपनी अभीप्सा के अन्दर सब प्रकार के छोटे-मोटे निजी हेतु मिला दोगे। और सच्ची बात तो यह है कि बहुत ही कम लोगों में बहुत ही शुद्ध अभीप्सा होती है। अभीप्सा करने की इच्छा, बस, इतना ही; यह वहीं रुक जाती है। चूँकि तुम प्रगति के लिए अभीप्सा करते हो, और बस, हम और आगे नहीं जायेंगे। हम प्रगति चाहते हैं। लेकिन सामान्यतः, इसके अन्दर प्रगति के परिणामों के लिए बहुत प्रकार की कामनाएँ जुड़ जाती हैं। तो इस तरह कामना आ जाती है;

इससे ठीक वही चीज़ आती है जिसके बारे में उन्होंने कहा है—एक ऐसी चेतना जो अशुद्ध और गँदली है, इसके अन्दर कोई उच्चतर चीज़ नहीं आ सकती। शुरू में ही इसे पूरी तरह निकाल देना चाहिये। अगर तुम अपने-आपको बहुत सच्चाई और निष्कपटता के साथ, बहुत स्पष्टता और बहुत कठोरता के साथ देखो तो बहुत जल्दी ही तुम देखोगे कि बहुत ही कम चीज़ें, चेतना की बहुत कम गतियाँ ऐसी हैं जो कामनाओं के मिश्रण से अछूती हों। जिन्हें तुम उच्चतर गतिविधि मानते हो उनमें भी, हमेशा... नहीं, सौभाग्यवश हमेशा नहीं, लेकिन बहुधा कोई कामना मिली होती है। अपने महत्त्व के भाव की कामना, या फिर केवल यही हो तो, एक प्रकार का आत्म-सन्तोष, श्रेष्ठतर होने का सन्तोष।

यह निश्चय ही उनसे बहुत अच्छा है जो अपने पड़ोसियों को आश्चर्य-चकित करने के लिए या दूसरों पर अधिकार जमाने के लिए योगी बनना चाहते हैं, यह चाहते हैं कि और लोग उनके लिए प्रशंसा और आदर से भरे रहें। कितनी चीज़ें सचमुच **शुद्ध** हैं? शुद्ध अभीप्सा? तुम्हें पहले उस स्तर तक पहुँचना चाहिये, उस स्तर तक जिसकी बात मैं पहले कह चुकी हूँ, जहाँ से तुम अपने-आपको एक मुस्कान, जरा-सी व्यंग्य-भरी मुस्कान के साथ देख सको और यह अनुभव करो कि तुम इतने छोटे, इतने छोटे, इतने छोटे, इतने तुच्छ, इतने **नगण्य** और इतने **मूर्ख** हो। उसके बाद चीज़ें ज़रा ज़्यादा अच्छी तरह चलने लगती हैं। लेकिन कितने **लम्बे समय** तक **सभी** गतिविधियाँ अपनी ओर ही मुड़ी रहती हैं! तुम बड़े विस्तार में आरम्भ करते हो, मानों तुम इस विश्व के सामने छलाँग मार रहे हो, और तुम अपने-आप पर मुड़ जाते हो, एक छोटे-से परिणाम की आशा करते हो, ज़रा-से सन्तोष की, बहुत ही ज़रा-से सन्तोष की आशा करते हो, चाहे वह तुम्हारे अपने अन्दाज़ में यही क्यों न हो: "ओह, मेरे अन्दर कितनी अच्छी अभीप्सा थी!"

तो, अब बस।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ३७०, ३८१-८२

जब तुम 'भागवत प्रेम' को पा लेते हो तो तुम सभी सत्ताओं में भगवान् से ही प्रेम करते हो। तब कोई और विभाजन नहीं रह जाता। —श्रीमाँ

विशुद्ध आनन्द को जानना

"दिव्य आनन्द ही रहस्य है। विशुद्ध आनन्द को जान लो और तुम भगवान् को जान जाओगे।"

(श्रीअरविन्द, 'विचार और झाँकियाँ' पुस्तक से)

मनुष्य "विशुद्ध आनन्द को कैसे जान" सकता है?

सबसे पहले, शुरू करने के लिए व्यक्ति को ध्यानपूर्वक निरीक्षण द्वारा यह जान लेना होगा कि कामनाएँ एवं कामनाओं की तृप्ति एक ऐसा हलका और अनिश्चित सुख प्रदान करती हैं जो मिश्रित, क्षणजीवी और एकदम असन्तोषदायी होता है। सामान्यतया यही पहला कदम होता है।

उसके बाद, यदि व्यक्ति समझदार हो तो उसे कामना को पहचानना सीखना होगा और ऐसे किसी भी काम से बचना होगा जो उसकी कामनाओं को सन्तुष्ट करे। मनुष्य को उन्हें सन्तुष्ट करने का यत्न किये बग़ैर दूर धकेल देना चाहिये। और फिर इसका पहला नतीजा, ठीक उन्हीं प्रारम्भिक परिणामों में से एक होगा जिसे बुद्ध ने अपने उपदेशों में यों स्पष्ट किया है : कामना को तृप्त करने की अपेक्षा उसे जीतने और उसका परित्याग करने में अनन्तगुना अधिक महान् आनन्द है। प्रत्येक सत्यनिष्ठ और दृढ़-निश्चयी साधक को कुछ समय बाद, देर या सवेर, कभी-कभी बहुत ही जल्दी, यह अनुभव होगा कि यह एक परम सत्य है, और कामना पर विजय प्राप्त करने से अनुभव होने वाला आनन्द कामना की तृप्ति से प्राप्त हो सकने वाले क्षणजीवी और मिश्रित सुख से इतना अधिक ऊँचा होता है कि उससे इसकी तुलना नहीं हो सकती। यह हुआ दूसरा क़दम।

साधना को निरन्तर जारी रखने से, स्वभावतः ही, बहुत थोड़े समय में कामनाएँ बहुत पीछे रह जायेंगी और फिर वे तुम्हें तंग नहीं करेंगी। इस प्रकार तुम अपनी सत्ता के अन्दर थोड़ी अधिक गहराई में प्रवेश करने के लिए स्वतन्त्र हो जाओगे और स्वयं को... 'आनन्ददाता' के, 'दिव्यतत्त्व' के, भागवत 'कृपा' के प्रति अभीप्सा करते हुए उद्घाटित कर लोगे। और यदि ऐसा सच्चे आत्म-समर्पण के साथ किया जाये—ऐसे भाव के साथ जो

स्वयं को अर्पित करता है, प्रदान करता है और अपने उत्सर्ग के प्रतिदान के रूप में किसी भी चीज़ की आशा नहीं करता—तो व्यक्ति एक ऐसी मधुर, सुखद, अन्तरंग, ज्वलन्त, स्नेहभरी ऊष्मा का अनुभव करेगा जो हृदय को परिपूर्ण कर देती है और दिव्य 'आनन्द' की अग्रदूत होती है।

इसके बाद मार्ग सरल होता जाता है।...

(सच्चे आनन्द की यह स्थिति) किसी भी वस्तु पर आश्रित नहीं होती। यह बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती, यह कम या अधिक अनुकूल परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करती, और किसी भी वस्तु पर निर्भर नहीं करती : वह विश्व के मूलतत्त्व के साथ मिलन की स्थिति है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २३, २४-२५, २६

परन्तु अनासक्ति के बिना 'आनन्द' पाना एक बहुत ख़तरनाक उपहार होगा जो बहुत सरलता से विकृत हो सकता है। अतएव, अनासक्ति को पाये बिना 'आनन्द' की खोज करना बहुत बुद्धिमानी की बात नहीं मालूम होती। मनुष्य को सबसे पहले सभी सम्भवनीय द्वन्द्वों के परे, निस्सन्देह, वेदना और आनन्द, दुःख और सुख, उत्साह और अवसाद के परे अवश्य चले जाना चाहिये। यदि कोई इस सबसे ऊपर हो तो फिर बिलकुल सुरक्षित रूप में 'आनन्द' के लिए अभीप्सा कर सकता है।

लेकिन जब तक यह अनासक्ति सिद्ध नहीं हो जाती, मनुष्य सरलतापूर्वक 'आनन्द' को आवेशमयी साधारण मानवीय सुख की स्थिति के साथ मिला सकता है, और यह बिलकुल भी सच्ची वस्तु नहीं होगी, यहाँ तक कि उस वस्तु का विकृत रूप भी नहीं, क्योंकि दोनों का स्वभाव एक-दूसरे से इतना भिन्न है, लगभग एकदम विपरीत है, कि तुम एक से दूसरे में जा ही नहीं सकते। अतः, यदि कोई मार्ग पर सुरक्षित रहना चाहता है तो, मुझे ऐसा लगता है कि, शान्ति की, पूर्ण स्थिरता की, पूर्ण समता की, चेतना विस्तारित करने की, एक अधिक विशाल समझदारी की तथा समस्त कामना, समस्त अभिरुचि, समस्त आसक्ति से मुक्ति की खोज करना निश्चय ही एक अनिवार्य प्रारम्भिक शर्त है।

यह दोनों की, आन्तर और बाह्य साम्यावस्था की 'गारंटी' है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३९२-९३

अपने अन्दर की विजय का विश्व पर प्रभुत्व

यदि आन्तर चेतना और ज्ञान के प्रयत्न से तुम सचमुच अपने अन्दर किसी कामना पर विजय पा सको, अर्थात्, उसे विघटित कर सको, उसे जड़ से निकाल बाहर कर सको और यदि आन्तरिक सद्भावना के द्वारा, चेतना, प्रकाश, ज्ञान के द्वारा, कामना को विघटित कर सको तो सबसे पहले अपने अन्दर व्यक्तिगत रूप से, कामना की पूर्ति पर तुम जितने प्रसन्न होते उससे सैकड़ों गुना अधिक प्रसन्न होओगे और फिर इसका अद्भुत परिणाम होगा। इसकी प्रतिक्रिया सारे संसार में होगी जिसका तुम्हें कोई अन्दाज़ नहीं। वह फैलेगी। तुमने जो स्पन्दन पैदा किये हैं वे फैलते जायेंगे। ये चीज़ें बरफ़ के गोले की तरह बढ़ती जाती हैं। तुम अपने चरित्र में जो विजय प्राप्त करते हो, वह चाहे कितनी ही छोटी क्यों न हो, वह ऐसी है जो सारे संसार में प्राप्त की जा सकती है। अभी मेरा आशय इसी से था। वे सब चीज़ें जो आन्तरिक परिवर्तन के बिना केवल बाहर से की जाती हैं—जैसे विद्यालय, अस्पताल वगैरह बनवाना—वे मिथ्याभिमान के द्वारा, बड़े होने की भावना के द्वारा की जाती हैं; जब कि ये छोटी अलक्षित चीज़ें, जिन्हें अपने अन्दर जीता जाता है, अनन्तगुनी बड़ी विजयें होती हैं, भले उनके परिणाम छिपे रहें। तुम्हारी प्रत्येक गतिविधि, जो मिथ्या और सत्य-विरोधी है, वह भागवत जीवन का निषेध है।...

अगर तुम सचमुच कुछ भला करना चाहते हो तो सबसे अच्छी चीज़ जो तुम कर सकते हो वह यह है कि एक के बाद एक पूरी सच्चाई के साथ अपने अन्दर विजय प्राप्त करो। इस तरह तुम संसार के लिए अपनी क्षमता के अनुसार अधिक-से-अधिक कर सकोगे।...

वह सारे संसार को बदल नहीं देगी। क्योंकि तुम्हारी विजय संसार के लिए बहुत छोटी है। इस प्रकार की लखोखा विजयों की ज़रूरत है। संसार की तुलना में तुम्हारी विजय बहुत ही छोटी है। लेकिन वह और चीज़ों के साथ मिल जाती है...। यह कहा जा सकता है कि यह संसार में किसी चीज़ को करने की **क्षमता** लाने के समान है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २१-२२

सामान्य जीवन बहुत-सी इच्छाओं और लालसाओं का चक्कर है। जब तक आदमी इनमें फँसा रहे तब तक कोई स्थायी प्रगति नहीं हो सकती। इस चक्कर में से निकलने का रास्ता खोजना चाहिये। उदाहरण के लिए, साधारण जीवन की सबसे बड़ी तल्लीनता को लो—लोग सदा यही सोचते रहते हैं कि वे क्या खायेंगे और कब खायेंगे और वे काफ़ी खा रहे हैं या नहीं। भोजन के लोभ को जीतने के लिए सत्ता में ऐसी समता का विकास होना चाहिये कि तुम भोजन की ओर से बिलकुल उदासीन रह सको। अगर तुम्हें भोजन मिले तो तुम खा लो, न मिले तो ज़रा भी चिन्तित न होओ; और सबसे बड़ी बात यह है कि तुम हमेशा भोजन के बारे में ही सोचते न रहो। और नकारात्मक सोचना भी न हो। संन्यासियों की तरह परहेज़ की बातें सोचना, उसकी तरकीबें ढूँढ़ते रहना भी उसी तरह भोजन में फँसे रहना है जैसे लोभ के साथ भोजन के सपने लेना। उसकी ओर से उदासीनता की वृत्ति रखो : यही मुख्य बात है। भोजन के विचार को अपनी चेतना से निकाल दो, उसे ज़रा भी महत्त्व न दो।

तुम एक बार अपनी चैत्य सत्ता, अपनी गहराइयों में स्थित सच्ची अन्तरात्मा के साथ सम्पर्क कर लो तो यह बहुत आसान होगा। तब तुम एकदम अनुभव करोगे कि ये चीज़ें कितनी महत्त्वहीन हैं, कि एकमात्र वस्तु जिसका महत्त्व है, वह है भगवान्। चैत्य में रहने का अर्थ है, सब प्रकार की लोभ-लालसा से ऊपर उठ जाना।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १३९

आवश्यकता है आसक्ति और भोजन के लिए लोभ और जीभ की लालसाओं से मुक्ति की आन्तरिक वृत्ति की। अनुचित रूप से भोजन की मात्रा कम कर देने या अपने-आपको भूखा मारने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हें शरीर के पोषण, उसके बल और स्वास्थ्य के लिए, किसी आसक्ति और कामना के बिना पर्याप्त मात्रा में भोजन करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २७८

सच्ची चेतना का विकास करने और आत्म-संयम प्राप्त करने के मूल में सबसे बड़ी कठिनाई है, बिना पक्षपात के चुनाव करना तथा बिना कामना के कार्य सम्पन्न करना। इस भाव में चुनाव करने का तात्पर्य है, सच्ची वस्तु क्या है यह देखना और उसे जीवन में उतारना; और इस प्रकार चुनाव करना, किसी वस्तु, किसी व्यक्ति, कार्य और परिस्थिति के प्रति ज़रा भी व्यक्तिगत पक्षपात रखे बिना चुनाव करना ठीक वह कार्य है जो एक सामान्य मानव-प्राणी के लिए सबसे अधिक कठिन होता है। फिर भी बिना किसी पक्षपात के, सभी आकर्षणों और पसन्दगियों से मुक्त होकर, एकमात्र पथ-प्रदर्शक परम सत्य के पक्ष में खड़े होकर हमें कार्य करना सीखना होगा; और एक बार जब हम परम सत्य के अनुरूप आवश्यक कार्य का चुनाव कर लें तब हमें बिना किसी कामना के उसे कार्यान्वित करना होगा।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. १

आवश्यकता इस बात की है कि हमारे अन्दर एक ऐसी अभीप्सा हो जो हमारी सत्ता के अन्दर एक स्थायी अग्नि की तरह जलती रहे और जब-जब हमारे अन्दर कोई कामना, कोई अभिरुचि, कोई आकर्षण उठे तब-तब उसे इस अग्नि में झोंक दिया जाये। यदि तुम इसे लगातार करते रहो तो देखोगे कि तुम्हारी सामान्य चेतना के अन्दर सत्य-चेतना की एक क्षीण किरण उदित होने लगी है। प्रारम्भ में वह धीमी होगी, कामनाओं, अभिरुचियों, आकर्षणों और पसन्दगियों के समस्त कोलाहल के पीछे बहुत दूर होगी। परन्तु तुम्हें इन सबके पीछे जाना होगा और उस सत्य-चेतना को प्राप्त करना होगा जो पूर्णतः स्थिर, प्रशान्त और लगभग निश्चल-नीरव है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २-३

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

मई

१. जब हम अपनी इच्छानुसार मन को निश्चल-नीरव बनाना और ग्रहणशील निश्चल-नीरवता में उसे एकाग्र करना सीख जायेंगे तब ऐसी कोई समस्या नहीं रह जायेगी जिसे हम हल न कर सकें, कोई ऐसी मानसिक कठिनाई नहीं रह जायेगी जिसका कोई समाधान न प्राप्त हो जाये। जब विचार चञ्चल होता है तब वह अस्तव्यस्त और शक्तिहीन हो जाता है; सजग शान्ति के अन्दर ही ज्योति प्रकट हो सकती है और मनुष्य की क्षमताओं के नवीन क्षेत्रों को उन्मुक्त कर सकती है।

२. छिछला अवलोकन सहायता नहीं कर सकता और जब तक तुम चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क न साध लो, ज्यादा अच्छा यही होगा कि व्यर्थ विश्लेषण में समय काटने की जगह हमेशा अपना अच्छे-से-अच्छा करने की और तुम जितने अच्छे हो सकते हो उतने अच्छे होने की कोशिश करो।

३. अपने-आपको जानने के लिए तुम्हें अपने-आपको उच्चतर और गहनतर चेतना से देखना होगा जो तुम्हारी प्रतिक्रियाओं और भावों के सच्चे कारणों को विवेक के साथ देख सके।

४. जिस क्षण तुमने किसी चीज़ को स्वीकार करने का निश्चय कर लिया है तभी से उसे भरसक अच्छी-से-अच्छी तरह करना चाहिये।

५. जो कार्य को सम्पादित करते हैं उनमें शेखी बघारने की आदत नहीं होती। वे अपनी ऊर्जा को काम पूरा करने के लिए बनाये रखते हैं और परिणाम का यश शाश्वत प्रभु के लिए छोड़ देते हैं।

जब तुम्हारे अन्दर सच्ची मनोवृत्ति हो तो हर चीज़ सीखने का अवसर हो सकती है।

६. ... सभी परिस्थितियों में जड़ता सबसे बुरी चीज़ है।

अभीप्सा एकमात्र उपचार है—एक ऐसी अभीप्सा जो सदा सतत जलती हुई शुद्ध ज्वाला की तरह ऊपर उठती है और सत्ता की सभी

अशुद्धियों को जला डालती है।

७. जहाँ कहीं कपट है वहीं ख़तरा है।

८. तुम्हारी चेतना की गहराई में तुम्हारे अन्दर रहने वाले भगवान् का मन्दिर, तुम्हारा चैत्य पुरुष है। यही वह केन्द्र है जिसके चारों ओर तुम्हारी सत्ता के विभिन्न भागों को, परस्पर-विरोधी गतियों को जाकर एक हो जाना चाहिये। तुम एक बार चैत्य पुरुष की चेतना को और उसकी अभीप्सा को पा लो तो सन्देहों और कठिनाइयों को नष्ट किया जा सकता है। इस काम में कम या अधिक समय तो लगेगा परन्तु अन्त में तुम अवश्य सफल होओगे।

९. योग-साधना का सारा प्रयोजन ही यह है कि सत्ता के सभी बिखरे हुए भागों को इकट्ठा करके अविभाजित एकता में गढ़ा जाये। जब तक यह नहीं हो जाता तब तक कठिनाइयों से—उदाहरण के लिए सन्देह, उदासी या दुविधा जैसी कठिनाइयों से तुम्हारा पिण्ड नहीं छूट सकता।

१०. बाहरी जगत् में जो सामान्य शक्तियाँ काम कर रही हैं उनके हाथों में अपने-आपको मत छोड़ो। अगर तुम्हें कोई कार्य बहुत जल्दी भी करना हो तो एक क्षण के लिए पीछे हट जाओ, तब तुम देखोगे और आश्चर्यचकित हो जाओगे कि कितनी जल्दी और कितनी अधिक सरलता के साथ तुम्हारा काम हो जाता है।

११. आन्तरिक शान्ति का अभ्यास करो, कम-से-कम थोड़ा आरम्भ कर दो और तब तक अभ्यास करते रहो जब तक तुम्हें शान्त रहने की आदत न पड़ जाये।

१२. प्रत्येक बार जब तुम किसी अस्वस्थ कल्पना में रस लेते हो, अपने भयों की रूप-रेखा बनाते हो, दुर्घटनाओं और विपत्तियों की आशंका करते हो, तब तुम अपने भावी विनाश के लिए खाई खोदते हो। इसके विपरीत, तुम्हारी कल्पना जितनी अधिक आशापूर्ण होगी, अपने लक्ष्य को पूरा करना तुम्हारे लिए उतना ही अधिक सम्भव होगा।

१३. जब कोई व्यक्ति या कोई परिस्थिति तुम्हें ऐसे दोष के सम्मुख ला खड़ा करे जो तुम्हारे अन्दर है और जिसका तुम्हें पता नहीं, तो पूरी तरह प्रसन्न होओ। रोने-धोने की जगह तुम्हें खुश होना चाहिये और उस खुशी में वह शक्ति प्राप्त करो जो उस चीज़ से तुम्हारा पिण्ड

छुड़ा सके जिसे नहीं होना चाहिये।

१४ अपने अन्दर सम्पूर्ण समन्वय का निर्माण करो ताकि जब समय आये तो सम्पूर्ण सौन्दर्य अपने-आपको तुम्हारे द्वारा प्रकट कर सके।

१५. अगर कोई नियन्त्रण में रहने की क्षमता नहीं रखता हो तो वह जीवन में कोई भी चिरस्थायी मूल्य की चीज़ करने में असमर्थ होता है। तुम्हें हर चीज़ में, हर हालत में अपना सन्तुलन बनाये रखना चाहिये।

१६. अगर तुम अपनी कामनाओं के स्वामी नहीं हो तो तुम अपने विचारों के स्वामी नहीं हो सकते। अपने-आपको दुर्बल बना कर नहीं, केवल बल, सन्तुलन और शान्ति में ही तुम अपनी कामनाओं पर विजय पा सकते हो।

१७. अगर तुम दुनिया को बदलना चाहते हो तो अपने-आपको बदलो। अपने आन्तरिक रूपान्तर द्वारा यह प्रमाणित करो कि सत्य-चेतना जड़-भौतिक जगत् पर अधिकार कर सकती है और धरती पर भागवत एकता अभिव्यक्त की जा सकती है।

१८. बाहर की किसी चीज़ को अपने तक आने और अपने-आपको परेशान न करने दो। लोग जो सोचते, करते या कहते हैं उसका बहुत कम महत्त्व है। एकमात्र चीज़ जिसकी गिनती है वह है, भगवान् के साथ तुम्हारा सम्बन्ध।

१९. काम के लिए चिन्ता न करो, जितनी स्थिरता और शान्ति से काम करोगे वह उतना ही ज़्यादा प्रभावकारी होगा।

२०. भय गुप्त स्वीकृति है। जब तुम किसी चीज़ से डरते हो तो इसका यह अर्थ है कि तुम उसकी सम्भावनाओं को स्वीकार करते हो और इस तरह उसकी पकड़ को मज़बूत बना देते हो। कहा जा सकता है कि वह अवचेतन स्वीकृति है। भय को बहुत तरीकों से जीता जा सकता है। साहस, श्रद्धा, ज्ञान इनमें से कुछ हैं।

२१. प्र—अवसाद के हमलों से कैसे बचा जाये?
उ—अवसाद पर ध्यान न दो और इस तरह काम करते जाओ मानों उसका अस्तित्व ही न हो।

२२. हमारा रास्ता **बहुत लम्बा** है और यह अत्यावश्यक है कि हम प्रत्येक पग पर यह पूछे बिना कि हम आगे बढ़ रहे हैं या नहीं, शान्ति के

साथ आगे बढ़ते रहें।

२३. मेरी समस्त शक्ति तुम्हें सहायता देने के लिए तुम्हारे साथ है; शान्त विश्वास के साथ अपने-आपको खोलो, भागवत कृपा पर श्रद्धा रखो और तुम अपनी सभी कठिनाइयों को पार कर जाओगे।
दुर्बल होने की भावना को स्वीकार ही क्यों किया जाये? यही तो बुरी बात है।

२४. परम प्रभु, हमें नीरव रहना सिखा ताकि नीरवता में हम तेरी शक्ति पा सकें और तेरी इच्छा को समझ सकें।
हमें सत्य की ओर अपने प्रयास में वास्तविक रूप से सच्चा होना सिखला।

२५. वास्तव में भूतकाल को भूल जाना और सोचने की आदत से पिण्ड छुड़ाना कठिन काम है और उसके लिए कठोर "तपस्या" की ज़रूरत होती है। लेकिन अगर तुम्हें भागवत कृपा पर श्रद्धा है और तुम पूरे हृदय से उसके लिए याचना करो तो तुम ज़्यादा आसानी से सफल होओगे।

२६. वर दे कि अभीप्सा का सूर्य अहंकार के बादलों को छितरा दे।

२७. काम के लिए वर्तमान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज़ है। भूतकाल को रास्ते में न आना चाहिये और भविष्य को तुम्हें खींच न लेना चाहिये।

२८. बाहरी परिस्थितियाँ चाहे जो भी हों, वे हमेशा बिना अपवाद के, तुम्हारे अन्दर जो कुछ है उसका वस्तुगत प्रक्षेपण होती हैं। जब अपने काम में तुम्हें कोई चीज़ बाहर से तकलीफ़ देती हुई मालूम हो तो अपने अन्दर देखो और वहाँ, अपने अन्दर तुम उसके अनुरूप तकलीफ़ पाओगे। अपने-आपको बदलो और परिस्थितियाँ बदल जायेंगी।

२९. भगवान् के लिए सतत अभीप्सा करते हुए अपने अन्दर निवास करना ही हमें जीवन की ओर एक मुस्कुराहट के साथ देखने तथा शान्तिपूर्वक रहने के योग्य बनाता है, बाह्य परिस्थितियाँ कैसी भी क्यों न हों।

३०. क्रोध और बदले की भावना निचली मानवता की वस्तुएँ हैं, ये बीते कल की मानवजाति की चीज़ें हैं, आने वाले कल की नहीं।

३१. सभी वस्तुओं को मधुरता की ओर मोड़ दो; यही दिव्य जीवन का नियम है।

धरती प्रकाश की ओर बढ़ रही है

आज मानवता के लिए पुकार उठ रही है कि वह महानतम परिवर्तन के प्रति जागे—चेतना का आन्तरिक परिवर्तन और जीवन तथा भौतिक जगत् का बाहरी परिवर्तन। यह परिवर्तन ऊपरी लीपा-पोती नहीं, बल्कि मौलिक होगा, यानी, यह नहीं कि हम इस जगत् को बस थोड़ा-सा सुधार कर छोड़ दें या कई मायनों में बेहतर बना दें, नहीं। हमारा लक्ष्य है कि हम इसकी जड़ से इसके तत्त्व को पूरी तरह से बदल दें। और हमारे पार्थिव जीवन का लक्ष्य सलीब पर चढ़ा हुआ प्रभु का शरीर नहीं होगा बल्कि होगा सम्पूर्णतः भव्य-सुन्दर-उदात्त शरीर।

स्वाभाविक है कि हमारी पुरानी आदतें, धरती की हज़ारों शक्तियाँ, सहज प्रवृत्तियाँ और पारम्परिक रूढ़ियाँ—ये सब इतनी बड़ी उथल-पुथल को सह नहीं पायेंगी। धरती के प्राणी—वे जहाँ कहीं हों, जो कोई हों, इस प्रकाश को सह नहीं सकेंगे जो धरा को प्रकाशित करने के लिए उतर रहा है। उसका प्रभाव बहुत, बहुत ही प्रबल होगा; यही कारण है कि वे सत्ताएँ जो छाँव को छोड़ना नहीं चाहतीं, जो अपने सुखद अँधेरे में दुबकी रहना चाहती हैं, बहुत कुलबुलायेंगी, अन्धकार के कुएँ में और गहरे उतरने की पूरी कोशिश करेंगी क्योंकि वे किसी भी तरह के बदलाव को नहीं चाहतीं। लेकिन, आदेश आ गया है... धरती **प्रकाश** की ओर बढ़ रही है।

श्रीअरविन्द ने अवतरित होते हुए प्रकाश को रूप देने के लिए, मानव को देवदूत बनाने के लिए ही आश्रम की स्थापना की। वे नहीं चाहते थे कि मनुष्य अब और अपनी वर्तमान अवस्था, यानी अर्ध-पशु की अवस्था में बना रहे।

श्रीमाँ का बचपन से ही एक सपना था कि धरती पर एक ऐसा स्थान हो जहाँ मनुष्य मुक्त, धीर, पवित्र, प्रेममय, कामना-वासना-रहित, आन्तरिक और बाह्य समृद्धि की बहुलता में निवास करें। वे ऐसे स्थान का निर्माण कर रही हैं, इस दिशा में भरपूर प्रयास हो रहा है, स्वाभाविक है कि धरती की वर्तमान सीमाओं और परिस्थितियों के बावजूद माँ हम सबको एक उच्चतर चेतना की ओर खुलने के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं, ताकि हम उच्चतर सत्ता बनने, उच्चतर, यानी ज्योतिर्मय जीवन बिताने की ओर प्रवृत्त हो सकें!

इस सारे प्रयास में विरोधी शक्तियाँ आड़े आयेंगी ज़रूर। हमारे भूत और वर्तमान की सँकरी व्यवस्थाएँ यह नहीं चाहतीं कि मानव अपने अतीत और वर्तमान को छोड़ दे, कि वह भविष्य में पदार्पण कर, नूतन सत्ता बने। साथ ही हमें हमेशा यह भी याद रखना चाहिये कि विरोधी शक्तियाँ ही वे अग्नि-परीक्षाएँ हैं जो हमें पूर्णता की कसौटी पर कसती हैं। हमें यह विश्वास रखना चाहिये कि जीवन के सभी उतार-चढ़ावों, कष्टों, दुर्घटनाओं, घटनाओं इत्यादि के बावजूद, हम निस्सन्देह भागवत उपलब्धि की ओर ही बढ़ रहे हैं।

—श्री नलिनीकान्त गुप्त

चाहे तपस्या से हो या आत्म-समर्पण से—इससे कुछ नहीं आता-जाता; मुख्यतः बात बस यही है कि साधक लक्ष्य की ओर अपनी दृष्टि बनाये रखने में दृढ़ रहे। एक बार जब उसने अपने पैर इस मार्ग पर रख दिये तब फिर भला किसी तुच्छतर वस्तु के लिए वह कैसे इससे पीछे हट सकता है? यदि साधक दृढ़ बना रहे तो फिर पतनों से कुछ भी नहीं आता-जाता, वह फिर से उठता और आगे बढ़ता है। अगर वह अपने लक्ष्य पर दृढ़ बना रहे तो भगवान् की प्राप्ति के मार्ग का अन्त विफलता में नहीं हो सकता। और अगर तुम्हारे अन्दर कोई चीज़ ऐसी हो जो तुम्हें हमेशा आगे चलने के लिए प्रेरित करती हो—वैसी चीज़ अवश्य ही तुम्हारे अन्दर है—तो फिर पदस्खलन या पतन या श्रद्धा-विश्वास के भंग हो जाने से अन्तिम परिणाम में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता। जब तक संघर्ष समाप्त नहीं हो जाता और हमारे सामने सीधा, उन्मुक्त और निष्कलंक मार्ग नहीं दिखायी देता, तब तक हमें अपने प्रयास में निरन्तर लगे रहना चाहिये।

*

तुम्हें बस शान्त-स्थिर और अपने पथ का अनुसरण करने में दृढ़ बने रहना है और तुम अन्त तक पहुँच जाओगे। यदि तुम ऐसा करो तो परिस्थितियाँ अन्त में तुम्हारी इच्छा के अनुसार रूप ग्रहण करने को बाध्य होंगी, क्योंकि तब वह इच्छा तुम्हारे अन्दर भगवान् की ही इच्छा होगी।

—श्रीअरविन्द के एक पत्र से

श्रीमाँ के साथ पत्र-व्यवहार

(श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र की एक विद्यार्थिनी के नाम पत्र जिसने माताजी को सोलह वर्ष की उम्र में पत्र लिखना शुरू किया था।)

मधुर माँ,

पहले मेरी आदत थी कि सोने से पहले 'सावित्री' या आपकी कोई पुस्तक पढ़ लिया करती थी। लेकिन अब मेरी वह आदत छूट गयी है; अब मैं नियमित रूप से समाधि पर भी नहीं जाती। मैं इन चीज़ों का सच्चा मूल्य नहीं समझती। क्या हमें ये चीज़ें नियमित रूप से करनी चाहियें या केवल तभी जब इन्हें करने की इच्छा हो? हमें ये चीज़ें क्यों और कैसे करनी चाहियें?

व्यक्ति 'सावित्री' पढ़ता है अपनी बुद्धि को विकसित करने और गभीरतर चीज़ों को समझने के लिए।

व्यक्ति समाधि पर एकाग्र होता है भक्ति में प्रगति करने और अपने-आपको श्रीअरविन्द के साथ सम्पर्क में लाने के लिए ताकि उनकी सहायता पा सके।

अगर तुम्हारे लिए इन चीज़ों का कोई मूल्य है तो तुम्हें इन्हें नियमित रूप से करना चाहिये, क्योंकि अचेतना का प्रमाद तुम्हें यह करने से रोकता है।

तुम आध्यात्मिक और सचेतन जीवन के लिए जन्मी हो लेकिन, शायद उसे चरितार्थ करने के संकल्प के लिए अभी तुम बहुत छोटी हो।

आशीर्वाद।

२३ जुलाई १९६९

मधुर माँ,

हर बार जब मैं अच्छी तरह काम करने का निश्चय करती हूँ तो मैं देखती हूँ कि मेरा प्रयास दो दिन से अधिक नहीं टिकता। आपका क्या ख़्याल है कि मुझे क्या करना चाहिये ताकि मैंने जो करने का निश्चय किया है उसे अच्छी तरह कर सकूँ? मुझे लगता

है कि मेरे अन्दर कोई ऐसी चीज़ है जो मेरी आज्ञा मानने से इन्कार करती है।

हर एक के साथ यही होता है जब तक कि वह अपनी सारी सत्ता को सचेतन रूप से अपने चैत्य केन्द्र के चारों ओर एक न कर ले।

यह एक होना अनिवार्य है यदि तुम अपनी सत्ता के और उसकी समस्त क्रियाओं की स्वामी बनना चाहती हो।

यह एक लम्बा और अति सावधानी से करने-लायक काम है जिसमें बहुत अध्यवसाय की ज़रूरत होती है, लेकिन परिणाम कष्ट उठाने-लायक है, क्योंकि वह केवल स्वामित्व ही नहीं लाता बल्कि रूपान्तर की सम्भावना और चेतना की दीप्ति भी लाता है।

तुम यह करना चाहती हो?

अगर हाँ, तो मैं तुम्हारी सहायता करूँगी।

आशीर्वाद।

२८ अगस्त १९६९

मधुर माँ,

हम हर क्षण यह कैसे याद रख सकते हैं कि हम जो कुछ भी करते हैं वह आपके लिए होता है? विशेष रूप से जब हम पूर्ण निवेदन करना चाहते हैं, हमें यह कभी न भूलते हुए आगे कैसे बढ़ना चाहिये कि यह सब भगवान् के लिए है?

इसे प्राप्त करने के लिए तुम्हारे अन्दर **आग्रही** इच्छा-शक्ति और **बहुत अधिक धैर्य** होना चाहिये। लेकिन एक बार तुम यह करने की प्रतिज्ञा कर लो तो तुम्हें सहारा देने और तुम्हारी सहायता करने के लिए भागवत सहायता रहेगी। इस सहायता का अनुभव अन्दर हृदय में होता है।

आशीर्वाद।

९ सितम्बर १९६९

मधुर माँ,

मैं जन्मदिन का सच्चा अर्थ जानना चाहूँगी क्योंकि यहाँ उसका

बहुत महत्त्व है।

आन्तरिक प्रकृति की दृष्टि से व्यक्ति हर वर्ष अपने जन्मदिन पर अधिक ग्रहणशील होता है, अतः, हर वर्ष किसी नयी प्रगति में उसकी सहायता करने के लिए यह बहुत अच्छा अवसर होता है।

आशीर्वाद।

२५ सितम्बर १९६९

मधुर माँ,

आपने मुझे लिखा था कि चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क में आना आसान नहीं है। आप उसे कठिन क्यों मानती हैं? मैं कैसे शुरू करूँ?

मैंने कहा था 'सरल नहीं है' क्योंकि यह सहज रूप से नहीं होता—यह ऐच्छिक है। चैत्य सत्ता का प्रभाव हमेशा विचारों और क्रियाओं पर रहता है, लेकिन व्यक्ति विरले ही उसके बारे में सचेतन होता है, चैत्य सत्ता के बारे में सचेतन होने के लिए पहले तुम्हें ऐसा करने की चाह करनी चाहिये, अपने मन को जितना हो सके नीरव बनाना चाहिये और अपनी सत्ता के हृदय की गहराई में, विचारों और संवेदनों के परे प्रवेश करना चाहिये, तुम्हें नीरव एकाग्रता की और अपनी सत्ता की गहराइयों में उतरने की आदत डालनी चाहिये।

चैत्य सत्ता का शोध एक निश्चित और बहुत ठोस तथ्य है, जैसा कि जिन लोगों को अनुभव हुआ है वे सब जानते हैं।

आशीर्वाद।

६ अक्तूबर १९६९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४४५-४७

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

देखिये, यह रहस्य किसी के सामने खोलियेगा नहीं!

अमरीका के एक छोटे शहर में बसता था चार सदस्यों का एक छोटा परिवार—माता-पिता, बेटी सैली और बेटा जॉर्जी। सुखी, सुन्दर और सन्तुष्ट परिवार, लेकिन जैसा कि कहते हैं—'सब दिन होत न एक समान।' इस सुखी परिवार पर शनि की छाया पड़ गयी। दस साल का जॉर्जी बीमार पड़ा तो खाट से चिपक ही गया। महीने बीत गये लेकिन उसकी तबीअत सुधरने के आसार दूर-दूर तक नज़र नहीं आ रहे थे। सारा परिवार रात-दिन उसकी तीमारदारी में लगा रहता, सात साल की बहन सैली अपने भैया को गीत गा-गा कर सुनाती, अपनी प्यारी-प्यारी शरारतों से उसका मन बहलाती। पिता की जमा-पूँजी धीरे-धीरे चिकित्सकों के हवाले होती जा रही थी, लेकिन...

शहर के सबसे बड़े चिकित्सक ने आख़िर बीमारी पकड़ ली और तुरन्त ऑपरेशन की सलाह दी। ऑपरेशन का खर्च क्या वह परिवार बर्दाश्त कर सकता था? माता-पिता के सिवाय घर की हालत कौन जान सकता था भला? उस दिन सैली ने माँ को पापा से यह कहते सुना—"मार्टिन, जॉर्जी के ऑपरेशन के लिए इतना पैसा कहाँ से आयेगा? हमारे रिश्तेदारों में भी कोई ऐसा नहीं जिसके पास इतना धन देने का बूता हो। क्या तुम अपने ऐसे किसी मित्र को जानते हो जो इस आड़े वक्त हमारे काम आ सके?"

सैली ने देखा, पापा नीची निगाहें किये पैर के अँगूठे से धरती को कुरेदे जा रहे थे, शायद उनकी आँखों से दो बूँद आँसू भी निकल कर गाल पर बह चले थे। तभी सैली ने पापा को बुदबुदाते हुए सुना—"सूज़ी, अब तो हमारे बेटे को एक चमत्कार ही बचा सकता है।"

सैली की बाँछें खिल गयीं, वह मन ही मन बुदबुदाती हुई दौड़ी अपने कमरे की तरफ़—अरे, पापा अब क्यों दुःखी हैं, डॉक्टर अंकल से पता तो चल गया कि भैया के ठीक होने के लिए किस चीज़ की ज़रूरत है। कमरे में पहुँच कर झपट कर उसने मिट्टी की गुल्लक उठा ली, आधे पल के लिए गुल्लक को मुग्ध नज़रों से देखा, उसे चूमा और एकबारगी धड़ाम ... धरती पर दे मारा, वही गुल्लक जो उसकी जान थी, जिसे दो साल पहले 'क्रिसमस फ़ादर' ने उपहार-स्वरूप उसके मोज़े के पास आकर रख

दिया था, क्योंकि मोज़े के अन्दर वह समा नहीं पायी होगी, जिसे देख भैया इतना ललच उठा था कि अपने 'बैडमिण्टन रैकेट' के साथ कई बार अदला-बदली करने के लिए उसे बहलाया-फुसलाया भी था, लेकिन कभी वह भाई की चिकनी-चुपड़ी बातों के जाल में नहीं फँसी थी, उसी को भाई के लिए चकनाचूर कर आज उसने मानों गड़ा धन पा लिया था, पैसे बटोरे, अच्छी तरह तीन बार गिने—कोई भूल न होने पाये! अपने रूमाल में कस कर बाँधे और मुट्ठी में रूमाल जकड़ कर वह माँ-पापा की नज़रों से बच कर कोने के दवाखाने की ओर दौड़ी।

वहाँ जाकर खड़ी हो गयी, दूकानदार किसी के साथ बातें करने में व्यस्त था, सात साल की छोटी बच्ची की तरफ़ किसी का ध्यान ही नहीं गया। दो मिनट नहीं... शायद चार मिनट बीत गये, लेकिन सैली को लगा कि वह कई घण्टों से यहाँ खड़ी है, वह खाँसी-खँखारी, जूतों को फ़र्श पर रगड़-रगड़ कर अपनी उपस्थिति जताने की कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ। वे दो लम्बे आदमी उस छोटी-सी लड़की के अस्तित्व को ही नकार बैठे थे—सैली को ग़ुस्सा आ गया। धीरे से रूमाल की गाँठ खोल उसने अपने पैसे निकाल कर 'काउण्टर' के शीशे पर ज़ोर से दे पटके—छन्नऽऽऽ... बस बात बन गयी!

"ओ बच्ची, क्या चाहिये तुम्हें?" दूकानदार के स्वर में खीज-सी थी—"ज़रा ठहरो, मैं इनसे अपने भाई के लिए कुछ ज़रूरी बातें कर रहा हूँ..."

"आप ज़रा ठहरिये, मुझे **अपने** भाई के लिए आपसे बहुत ज़रूरी बात करनी है" लड़की के स्वर में भी उतनी ही झुँझलाहट थी—"मेरा भैया बहुत बीमार है और मैं उसके लिए एक चमत्कार ख़रीदना चाहती हूँ।"

"हैं... क्या... क्या कहा तुमने... क्या ख़रीदना चाहती हो...?" दूकानदार की ज़बान लड़खड़ाने लगी।

"जी, चमत्कार, मेरे पापा आज माँ से कह रहे थे कि अब मेरे भैया को एक चमत्कार ही बचा सकता है। जल्दी से यह बताइये कि कितने पैसों का आता है चमत्कार?"

"लेकिन हम यहाँ चमत्कार नहीं बेचते बच्ची, मैं भला कैसे तुम्हारी मदद करूँ?" दूकानदार ने असमञ्जस में आकर कहा।

"देखिये, आप मुझे छोटी बच्ची समझ कर चलता करने की कोशिश

न करें। मेरे पास सचमुच के पैसे हैं, आप बस दाम बता दीजिये, मैं अपने पैसे देकर तुरन्त ख़रीद लूँगी।"

दूकानदार के साथ बातचीत कर रहे व्यक्ति ने फ़र्श पर घुटनों के बल बैठ कर सैली के गाल सहलाते हुए पूछा—"बेटी, तुम्हारे भाई को किस तरह के चमत्कार की ज़रूरत है?"

प्यार के स्पर्श से सैली की आवाज़ भरभरा उठी, बोली—"अंकल, वह मुझे नहीं मालूम, मैं बस इतना ही जानती हूँ कि मेरा भैया बहुत बीमार है, बड़े ऑपरेशन की सख़्त ज़रूरत है, लेकिन हमारे घर में बड़े ऑपरेशन के पैसे नहीं हैं, लेकिन अभी-अभी मैंने पापा को माँ से कहते सुना कि एक चमत्कार भैया को बचा सकता है, मेरे पास अपने जमा किये पैसे हैं, मैं उन पैसों से उसे ख़रीद कर भाई को बचा लूँगी।" कहते-न-कहते सैली की भर्राई आवाज़ आँसुओं की झड़ी में फूट पड़ी।

घुटनों के बल बैठे सज्जन ने बच्ची को अपने सीने से लगा कर पुचकारते हुए पूछा—"बेटी, कितने पैसे हैं तुम्हारे पास?"

सैली इस प्रश्न से इतनी ख़ुश हो उठी कि चहक कर बोल पड़ी—"जी, मेरे पास है पूरा एक डॉलर और ११ सेंट्स। कुछ कम नहीं हैं इत्ते पैसे, न अंकल?"

वे सज्जन 'हुर्रा' कह सैली को गोद में उठा कर एक झटके के साथ खड़े हो गये, ख़ुशी उनके शब्दों में उफन पड़ी—"क्या कहा, एक डॉलर, ११ सेंट्स, उस चमत्कार को ख़रीदने का एकदम से सही दाम जिससे तुम अपने प्यारे भैया को बचा सकती हो।"

"सचमुच..." सैली आगे न बोल पायी। अपनी जकड़ी हुई मुट्ठी को उनके हाथ में ढीला कर पैसे उन्हें थमा दिये।

उन सज्जन ने अपनी मुट्ठी कस ली, दूसरे हाथ से सैली का हाथ थाम कर बोले—"बेटी, मुझे अपने घर ले चलो, मैं तुम्हारे भाई से मिलना और तुम्हारे माता-पिता से कुछ बातें करना चाहूँगा।"

"तो आप भी रखते हैं अपने पास वह चमत्कार जो मेरे भाई को अच्छा कर देगा?" उन सज्जन के संग-संग उछलती-कूदती सैली उन्हें अपने घर ले आयी।

सचमुच ये थे अमरीका के प्रसिद्ध सर्जन डॉ. कार्ल्टन आर्मस्ट्राँग जो

उसी बीमारी के विशेषज्ञ थे जिससे जॉर्जी जूझ रहा था।

अगले दिन जॉर्जी अस्पताल में था, तीसरे दिन उसका सफल ऑपरेशन भी हो गया और दस दिनों के अन्दर वह घर में चहलक़दमी करता हुआ दीखने लगा, महीने भर बाद तो सब भूल भी गये कि वह कभी बीमार भी पड़ा था...।

पहले ही दिन से डॉ. कार्ल्टन सैली के परिवार के साथ घनिष्ठ रूप में जुड़ गये थे और नन्हीं सैली के तो वे दूसरे पापा ही बन गये थे। वह उन्हें 'पापा अंकल' कह कर ही पुकारती। सवेरे-शाम उन्हें सैली के घर हाज़िरी लगाने ज़रूर जाना पड़ता, नहीं तो उनकी नयी बिटिया उनसे रूठ कर, गाल फुला कर घर के किसी कोने में जा छिपती।

उस शाम को भी चाय की मेज़ पर सारा परिवार इकट्ठा हुआ था। बातों ही बातों में जॉर्जी की बीमारी का क़िस्सा छिड़ गया, अचानक सैली ने माँ को कहते सुना—"भैया कार्ल्टन, आज भी मैं यह विश्वास नहीं कर पा रही कि यह सब कैसे सम्भव हुआ—तुम्हारा यहाँ आना, जॉर्जी का ऑपरेशन करना, उसका इतनी जल्दी ठीक हो जाना, यह सब कुछ एक चमत्कार लगता है मुझे, और तुमने तो इसके लिए एक पाई तक नहीं ली, पता नहीं कितनी लागत लगी इस चमत्कार में?"

सैली की दृष्टि डॉक्टर की नज़रों से जा टकरायी, वहाँ चमक का फ़व्वारा फूट पड़ा। वह भाग कर उनकी गोदी में समा गयी, उनके कानों में फुसफुसा कर बोल उठी—"पापा अंकल, केवल मैं और आप ही जानते हैं कि इस चमत्कार में पूरे एक डॉलर और ११ सेंट्स की लागत लगी, है न?"

गोदी से उतरते हुए मानों सैली ने आँखों ही आँखों में उनसे कहा—"देखिये, यह रहस्य किसी के सामने खोलियेगा नहीं!"

सैली के 'पापा अंकल' सिर हिला कर धीमे-धीमे मुस्कुराये, ऊपर आकाश की ओर देख कर बुदबुदाये—"सचमुच प्रभु! इस चमत्कार की लागत है एक डॉलर ११ सेंट्स के साथ-साथ एक छोटी बच्ची का अटूट विश्वास!"

'पुरोधा' मई २००३ —वन्दना

'भागवत कृपा' में पूरी श्रद्धा रखो, वही सब चमत्कार करती है। —श्रीमाँ

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर,झुंझुनूं
श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनूं (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमां के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगाकर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो०-झुंझुनूं – ३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन – (०१५९२) २३२८८७, २३७४२८
टेलीफैक्स–२३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: **1st May 2017**
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtani Luthra
Mother of Nanak, Grade 4 and Nritu Luthra, Grade 6

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 1

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon